सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष २

अङ्क ७

वार्षिक मूल्य
१० रुपया

एक अंक
१ रुपया

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो ।
जब दोनों मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत कञ्चन करत खरो ॥
यह माया भ्रम जाल कहावत सूरदास सगरो ।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो ॥

— सूरदास

अक्टूबर
[illegible]

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, खवाँई एत्मादपुर जिला आगरा ।

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. एको देवः	....	१
२. आसन क्या ? (हमारा विशेष लेख)	योगिराजअनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. अहिंसा की परिसीमा — शत्रुप्रेम	(जातक कथा सार)	१०
४. विनोबा- विचार (विद्या को महत्ता, मन और प्रभु, पाप और पुण्य)		१२
५. सत्यम्-शिवम्- सुन्दरम्	(श्री वनवासी)	१
६. आध्यात्मिक उन्नति और सद्गुरु	स्व-श्री ...र बाबा	१५
७. मेरे सदगुरु देव एवं उनकी विलक्षण शक्ति	(श्री रमेश- कुशवाहा)	१
८. ऊँचे तत्व और यह शरीर	स्वामी विवेकानन्द	२५
९. योग की सात भूमिकाये	श्री सद्गुरुदेव की वाणी	२
१०. गुरु भक्ति की महिमा	(कु. शशिबाला भटनागर एम० ए० पूर्वार्ध)	३
११. गुरु – माहात्म्य	(कु. सुधा श्रीवास्तव एम० ए०)	३
१२. मन, चित्त और बुद्धि	(स्वामी आत्मानंद जी)	४
१३. सिद्ध कबीर के चमत्कारिक चरित्र	श्री एस० आर० सागर एस० आई० टी०	
१४. मोक्ष प्राप्ति का उपाय एवं अष्टाङ्ग योग	(श्री हरिप्रसाद उपाध्याय व्याकरणाचार्य)	
१५. मैं और मेरी मर्जी		टाइटिल का
१६ श्री गुरुदेवजी का कार्यक्रम		,,,,

ॐ

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिकपत्र

वर्ष २
अङ्क

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग:' ॥

अक्टूबर
सन् १९६९

एको देवः

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।

अर्थः—एक देव परमात्मा ही सब भूतों की हृदय-गुफा में छिपे हुऐ हैं। वे ही सब के कर्मो के अधिष्ठाता कर्मानुसार उन्हें फल देने वाले सब प्राणियों के आश्रय दाता है। वे सबको देखने वाले सबको चेतना प्रदान करने वाले सर्वथा विशद्ध, निर्लेप और प्रकृति के गुणों से अतीत भी हैं ।

अतः ऐसे परम प्रभु सदैव स्मरणीय हैं ।

हमारा विशेष–

आसन क्या ?

(योगिराज अनन्त श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज)

भगवान सदा शिव ने अपने ग्रन्थों में ८४ लाख योनियों का वर्णन किया है और ८४ लाख योनियों में विचरने वाले जितने जीव हैं; उन सभी के आसन, शयन आदि कार्य होते रहते हैं । आसन शब्द का शब्दार्थ

"आस्यते अनेन इति आसनम्

अर्थात् जिस विधि से बैठा जाय उस विधि का नाम ही आसन है । ८४ लाख योनियों के अन्दर जन्म लेने वाले जीव

"येनकेन प्रकारेण आसन
शयन एवं भ्रमणादि"

करते हैं । इसलिये उनके बैठने की जो क्रिया है, वह उनका आसन है । भगवान सदा शिव ने जितनी योनियां हैं उतने ही आसनों का वर्णन अपने मुखारविन्द से किया है, किन्तु वे सर्व शक्तिवान सदाशिव घट-घट वासी अन्तरयामी प्राणी मात्र की गति को समझने वाले अवश्य ही सब कुछ कर सकते हैं । वे

"कर्तु मकर्तु अन्यथाकर्तु म्"

की ताकत वाले हैं । चौरासी लाख योनियों के अन्दर जहां-जहां भी जीवों ने जन्म लिया है उन सब की आसन शयन विधि को वे परमेश्वर पहले से ही जानते थे, इसलिये उनका इस प्रकार से वर्णन करना कोई असम्भव बात नहीं थी । किन्तु वे सब भगवान शिव के कहे हुए चौरासी लाख आसन आज कल ग्रन्थों में पूर्ण रूपेण उपलब्ध नहीं है और उन सभी आसनों का वर्णन करना सर्व साधारण के लिये सर्वथा असम्भव है । इसलिये आजकल के योग प्रचारकों में और घिरण्ड आदि महर्षियों ने जिन आसनों का वर्णन किया है वे अधिक से अधिक चौरासी या प्रयास करने पर सौ या डेढ़ सौ तक मिल जाते हैं, जो योगाश्रमों की व्यायाम शालाओं में योगोपदेशक लोग कराते हैं । किन्तु उन सब में भी चौरासी आसन ही इस प्रकार के हैं जो सर्व साधारण के लिये विशेष लाभप्रद हैं । भगवान पतंजलिदेव ने आसन का लक्षण लिखते हुए योग दर्शन में

"स्थिर सुखमासनम्"

कह करके आसन की परिभाषा की है, इन शब्दों का अर्थ है कि जिसके करने से स्थाई सुख की प्राप्ति हो । बैठने की उस

क्रिया को आसन कहा है। इस सूत्र का भाष्य लिखते हुए भगवान व्यास देव ने कुछ आसनों के नाम भी लिखे हैं — पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तीक आसन, पर्य्यंक आसन आदि-आदि नाम भी लिखे हैं। स्थिर सुखमासनम् कहने से मनुष्य को जिस भी उपाय से स्थिर सुख लाभ हो उस ही क्रिया को आसन कहा जा सकता है, किन्तु भगवान व्यास देव ने उनका स्पष्टीकरण कर दिया क्योंकि उन्होंने खास-खास आसनों के नाम अंकित किये। दूसरे पाणनीय व्याकरण के नियमानुसार —

"आस्यते अनेन इति आसनम्"

कहने से बैठने की क्रिया का ही नाम आसन हमारे ग्रन्थों में मिलता है।

आसन सिद्धि का प्रयत्न

आसन करने का क्या फल है, हरेक पशु पक्षी की बैठने की विधि से हम बैठना सीखें और वैसा करने से हम किस परिणाम को पहुँचेंगे। ये सब तो आगे इसी पुस्तक में बतलाने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु परामर्श के तौर पर जिज्ञासुओं के लिये एक बात का भी पहले समझा देना बहुत उत्तम रहेगा कि किसी आसन के अभ्यास से हम स्थिर सुख लाभ तभी कर सकते है जब वह क्रिया हमें पूर्ण रूपेण सिद्ध हो जाय। स्थिर सुख का अर्थ है कायम रहने वाली शक्ति यह उस हालत में उपलब्ध नहीं हो सकती कि हम क्षणक्षण में अपने पैरों को बदलेत रहें, हाथों को बदलते रहें, ऐसा करने पर तो मन की शान्ति की अपेक्षा अशान्ति ही रहेगी, क्यों कि वह क्षण-क्षण में दुःख अनुभव करता रहेगा और बदलने की क्रिया करता रहेगा। इसलिये स्थिर सुख लाभ तो हमें उसी हालत में हो सकता है जब कि हम जिस आसन से बैठें उसी आसन से कई-कई घन्टे लगातार बैठें रहें और उसमें हमें किसी भी प्रकार की दुखानुभूति न हो प्रत्युत यह अनुभव होता रहे कि हम बहुत हल्के हैं और एक आनन्द में बैठे हैं। हमें अपना शरीर रुई की मानिन्द हल्का मालूम पड़ने लगे तो समझ लेना चाहिये कि हमारा इस आसन का अभ्यास आसन सिद्धि की ओर जारहा है। परमार्थ जिज्ञासु साधु लोग जंगलों में एक-एक आसन से कई-कई घन्टे बैठने के प्रयत्न में लगे रहते हैं किन्तु इस प्रकार का अभ्यास करते हुए उनको वर्षों व्यतीत हो जाते हैं फिर भी ये लोग आसन सिद्ध नहीं कर पाते। भगवान पतंजलि देव ने आसन सिद्धि का एक उपाय लिखा है वह बहुत ही उत्कृष्ट है और तथ्य से कहा जाय तो उसी का अवलम्ब लेने से मनुष्य पूर्ण रूपेण आसन सिद्धि को प्राप्त हो सकता है। जो शास्त्रोंके उस उपाय का अवलम्ब नहीं लेते उनका प्रयत्न

"श्रेकर्णात् कर्त्तम् श्रेयः"

के नियमानुसार यत्किंचित ठीक ही है किन्तु आसन सिद्धि और स्थिर सुख को चाहने वाले व्यक्तियों के लिये भगवान पतंजलि देव के कहे हुऐ निम्नांकित उपाय का अवलम्बन लेना परमावश्यक ही है।

प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम्।

अर्थात् आसन सिद्धि प्राप्त करने के लिए एक ऐसे उपाय की आवश्यकता है जिससे प्रयत्न शैथल्य होकर अनन्त समापत्ति हो जाय। जब तक मनुष्य का मन पूर्ण रूपेण एकाग्र नहीं हो पाता तब तक वह आसन सिद्धि के लिये प्रयत्न करता ही रहता है और अनन्त समापत्ति उससे हजारों कोष दूर रहा करती है। अनन्त समापत्ति का अर्थ है अखण्ड मंडलाकार व्यापक परमात्मा के स्वरूप में अपने आप को विलीन कर देना। कहीं कहीं पर योगाचार्य लोग शेषनाग के ध्यान को भी अनन्त समापत्ति कहते हैं, किन्तु कुछ भी हो उस अनन्त परमात्मा में मन के विलय हो जाने पर योगी को यह ज्ञान नहीं रहता कि उसका शरीर किस स्थिति में पड़ा है या बैठा है। आज घोर कलि-काल के समय में भी इस प्रकार के दृश्य देखने में आवे है कि जहाँ पर गुरुदेव के पूर्णानुग्रह से शक्ति पात हो जाने पर जिन साधकों के मन एकाग्र होते हैं और वह लोग वाह्य बोध शून्य हो जाते हैं, उनको दो दिन के अन्दर ही कई-कई घण्टे लगातार एक-एक आसन से बैठे हुए देखा गया है। और इस प्रकार की घटनायें जहाँ पर शक्तिपात दीक्षायें दी जाती हैं वहाँ पर स्वाभाविक घटित होती रहा करती हैं।

एक दिव्य घटना

एक स्थान पर एक योगिराज ने अपने एक शिष्य पर शक्तिपात किया और योगदीक्षा दी और वह लड़का एक आसन से बठ गया। शक्तिपात के फलस्वरूप उसके मन की इतनी ऊँची एकाग्रता हुई कि उसका मन उस सर्व शक्तिवान अनन्त में विलय हो गया और वह पहले दिन ही जड़वत् पत्थर की मूर्त्ति की तरह से कई घन्टे तक लगातार बैठा रहा और कई दिन के निरन्तर अभ्यास हो जाने के बाद उस साधक की इस प्रकार की स्थिति आई कि वह अनन्त समापत्ति से लगातार २४-२४ घण्टे एक ही आसन से बैठा रहता था और गुरुदेव उसको स्वयं चेतना देकर यह बोध कराया करते थे कि तुम्हें इतना लम्बा समय निकल गया है, अब तुम उठ जाओ और बाहर जाकर मल मूत्रादि का त्याग करो। इस प्रकार की दृढ़ स्थिति अनन्त समापत्ति का ही विशद परिणाम था। आसनें

सिद्धि का यही सरल एवं उच्चतम उपाय है। जो जिज्ञासु इस कृपा को लाभ कर लेते हैं उसके आसन स्वतः ही सिद्ध हो जाया करते हैं।

आसन सिद्धि का परिणाम

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासन जयान्ना-भिभूयते।

अर्थात् आसन सिद्धि का सबसे बड़ा फल द्वन्दानभिघात अर्थात् द्वन्द्वों से न सताया जाना सर्दी-गर्मी भूख-प्यास आदि के जोड़े को द्वन्द कहते हैं जिस व्यक्ति को आसन सिद्ध नहीं होता उसको सर्दी गर्मी, भूख, प्यास आदि की तृष्णा सताती रहा करती है और द्वन्दों से दबाया हुआ वह व्यक्ति कभी भी साधना की पूर्णता को नहीं पा सकता। इसलिये आसन सिद्धि का द्वन्दानभिघात सबसे ऊँचा परिणाम है। अतः जो लोग परमार्थ जिज्ञासु हैं उनको शास्त्रोक्त विधि से आसन जय प्राप्त करने के लिये अनन्त समापत्ति अवश्य करनी ही चाहिये ये आसनों के करने का पारमार्थिक लाभ है।

योगासन और व्यायाम

आजकल संसार में विविध प्रकार के व्यायामों का प्रचार है। लोग कसरत करना मुगदर चलाना, रस्सा खींचना, वजन उठाना आदि आदि बहुत प्रकार के व्यायामों को करते। इन व्यायामों को करने वाले लोग बड़े बड़े हट्टे-कट्टे एवं विश्व विजयी पहलवान दिखलायी देते हैं। एक पहलवान को अपने शरीर पर बड़ा भारी अभिमान होता है कि उसके किये हुए व्यायामों के फलस्वरूप उसके शरीर में इतनी बड़ी दृढ़ता आ गई कि उसकी मांस ग्रन्थियों को यदि बर्छियों से भी काटा जाय तो वह कट नहीं सकती। इस प्रकार के प्रदर्शन लोग स्थान स्थान पर करके दिखलाया करते हैं। अपने भुजदण्डों को फुला लेते हैं और दूसरे व्यक्तियों से कहते हैं कि हाथों के मुक्कों से व लकड़ी के डण्डों से उसको पीटें किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हो पाता। पीटने वाले थक जाते हैं किन्तु उनके उस तनाव में कोई किसी भी प्रकार की कमी नहीं आ पाती। अपने व्यायाम के इस परिणाम को देखकर वे लोग बड़े हर्षान्वित होते हैं और समझते हैं कि हमें यह बड़ा अलभ लाभ हुआ है। किन्तु बात ऐसी नहीं होती जैसी वे लोग अपने मन में समझते रहते हैं उनके उस व्यायाम से एक ही जगह इतनी दृढ़ता इसलिये आ जाती है कि उनके शरीर के छोटे छोटे स्नायु जिनका काम है सारे शरीर में रक्त का उचित मात्रा में वहन करें उनका वह सब जमाव वहाँ ही कर डालते हैं। अतः जो कार्य सारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये होना चाहिये था वह जाता रहता है और परिणाम स्वरूप पहलवान लोग भी जिन्होंने कई हजार

दंड और बैठक की हैं बार बार रोगी दिखलाई देते हैं और अन्त में उनके शरीर इतने भारी हो जाते हैं कि उनको अपना शरीर भी स्वयं भार ही दिखलाई देने लगता है। चलने फिरने, उठने-बैठने में भारी आलस्य महसूस करते हैं। उनके शरीर की ग्रन्थियों में जगह जगह दर्द होने लगते हैं, यह परिणाम अन्यान्य प्रचलित व्यायामों में भी होते हैं, जिनका तनाव शरीर के एक भाग पर ही अधिक मात्रा में पड़ता है। इसलिये सभी व्यायामों का अन्तिम परिणाम केवल दुख निकलता है।

एक और बात

संसार में एक किम्वदन्ति आमतौर पर लोग जानते हैं कि हमारा जीवन प्राणों पर निर्भर है और कहने वाले यह भी बतलाते हैं कि मनुष्य अपने जीवन में गिनी हुई श्वासों की संख्या को लेकर आया करता है। जितना अधिक वह श्वासों के खजाने को बचाकर रखेगा उतना ही उसका जीवन स्वस्थ एवं लम्बा होता चला जायेगा और जो किसी भी लापरवाही से अपने श्वासों का दुरुपयोग करते हैं शनैः शनैः अपनी मृत्यु को पास बुलाते जाते हैं। और थोड़े ही समय में काल के ग्रास बन जाते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि अपने श्वासों की निधि को मनुष्य को व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये।

श्वासों का अपव्यय कैसे होता है ?

हमें यह भी विचार लेना चाहिये, कि हमारे श्वासों का आना-जाना किस प्रकार से अधिक मात्रा में होता है। अधिकांश में जो लोग विलासी हैं उनके श्वस बहुत जल्दी ही फूल निकलते हैं वह थोड़ा सा भी कोई काम करें तो हाँफने लग जाते हैं, और उनको इतना अधिक घबराहट होती है कि अब हमारे प्राण कभी भी निकल सकते हैं। उनके दिल की धड़कन बहुत अधिक मात्रा में होने लगती है। इसके अतिरिक्त जो लोग ऐसे व्यायाम करते हैं जिनमें श्वासों का यातायात अधिक मात्रा में होने लगता है, वह अपने श्वसों के खजाने को जल्दी ही लुटा बैठते हैं और थोड़े समय के बाद ही उन्हें इस पवित्र जीवन से हाथ धोना पड़ता है। अतः स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिये अपने श्वासों के खजाने की सुरक्षा भी बहुत आवश्यक है। इसलिये योगी लोग प्राणायाम करते हैं और उसके परिणाम स्वरूप वे लोग कालजित हो जाते हैं अर्थात् मौत पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

यौगिक व्यायाम का शरीर पर प्रभाव

ऊपर हम शास्त्रीय विधि से योगासनों द्वारा पारमार्थिक लाभ का वर्णन कर चुके हैं। प्रत्येक योगासन के करने से पारमार्थिक लाभ अवश्यम्भावी है और मन की एकाग्रता

का जनक है, क्योंकि हमारे चित्त की प्रसार-भूमि हमारे शरीर की नाड़ियां हैं। यदि हमारा स्नायु-मंडल पूर्ण रूपेण शुद्ध नहीं रहता है तो हमारी मन की एकाग्रता भी पूर्ण रूपेण नहीं हो सकती। नाड़ी शुद्धि के लिये यौगिक व्यायाम परम उपादेय है। इसके अतिरिक्त योगासनों का व्यायाम हमारे उन आचार्यों का निकाला हुआ व्यायाम है जो चित्त के सभी परिणामों को समझने वाले थे एवं भूत भविष्य के ज्ञाता थे व उनके निश्चित किये हुए सिद्धान्त सभी पतन से परे हैं क्योंकि वे लोग सब प्रकार से परिपूर्ण थे।

आप्त काम थे और हरेक क्रिया के भूत भविष्य के परिणामों को भली प्रकार से समझने वाले थे। इसलिये योगासनों का व्यायाम हमारे लोक व परलोक के लिये एक सिद्ध व्यायाम है। योगासनों के करने से दण्ड व बैठकों की भाँति शरीरके किसी एक भाग पर ही तनाव नहीं पड़ता प्रत्युत शरीर के हर भाग पर व जगह जगह पर उसका प्रभाव पड़ा करता है। जो लोग नित्य नियम से योगासन करने वाले हैं उनका स्वास्थ परमोज्वल रहता है। स्वास्थ्य शब्द का अर्थ है जिससे अपने स्वरूप में स्थित रहे और स्वस्थ के भाव को ही स्वास्थ्य कहते हैं। योगासनों का व्यायाम भी एक इस प्रकार का व्यायाम है जिससे शरीर पूर्णरूपेण स्वस्थ रह सकता है। पादहस्त आसन पश्चिमोत्तान, उर्ध्व पश्चिमोत्तान, उष्ट्रासन आदि आसनों के करने से एडी से लेकर नितम्ब भाग तक के सभी स्नायुओं में पूरी पूरी उत्तेजना मिलती है। और उड्यान बंध आदि स्वाभाविक लगने से जठराग्नि पूर्ण रूपेण प्रदीप्त होती है। मल विसर्जिनी नाड़ियें उत्तेजना पाकर मल का पूर्ण रूपेण परित्याग करने लगती है। धनुरासन शलभासन नाव आसन भुजंगासन इत्यादि आसनों के करने से शरीर के कटि भाग में पूरा तनाव पड़ता है फेफड़ों का प्रसार होता है। अतः फेफड़ों की शुद्धि कटिभाग की दृढ़ता शरीरमान की वृद्धि आदि परिणाम इन आसनों के करने से अवश्य स्भावी है। इसके अतिरिक्त —

मत्स्य आसन, मत्स्येन्द्रासन
शलभ, गर्भासन, बकासन, मयूरासन

आदि सब आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले है इनके करने से सभी प्रकार के उदर विकार अवश्य नष्ट हो जाते है। पेट बहुत नरम रहता है किसी प्रकार के यकृत प्लीहा आदि के दावों का स्वाभाविक समूलोन्मूलन हो जाता है। वात-पित्त आदि के गुल्म रोग स्वभाव से ही हट जाते हैं और इसी प्रकार से सर्वाङ्ग आसन हलासन, पूर्वोत्तान, ताड़ासन वृक्षासन आदि

आदि आसनों के करने से नीचे की ओर होने वाली रक्त की गति थोड़ी देर के लिये शिरो-भाग की ओर होने लगती है । और इसके परिणाम स्वरूप शिर व छाती की सब बीमारियाँ यकृत, प्लीहा आदि की वृद्धि अनायास दूर हो जाती है । जो लोग शीर्षा-सन के या अन्य आसनों के अभ्यासी हैं। उनको कठिन वीर्य-विकार जो किसी प्रकार के औषधोपचार से असम्भव प्रायः है वह थोड़े दिन में दूर हो जाता है । इसके अतिरिक्त जो आसनों के नित्य करने के अभ्यासी हैं, और दूध, घी आदि की मात्रा को उचित रूप से सेवन करनेवाले हैं वे लोग इन अभ्यासों के द्वारा अपनी युवावस्था कायम रख लेते हैं। उनका मुख-मंडल दैदीप्यमान दिखलाई देता है। आज – कल के इस घोर कलि - काल में भी इस अवनि मंडल पर ऐसे लोग दिखलाई देते हैं, जो शीर्षासन आदि योग के प्रमुख आसनों का घण्टों अभ्यास नित्य नियम से करते हैं, जो लोग शीर्षासन का लगभग ३ घण्टे का अभ्यास यथार्थ विधि से बढ़ा लेते हैं, वे कराल काल पर जय प्राप्त करते हैं। हमने अपने योग प्रचार के भ्रमण में कई इस प्रकार के व्यक्तियों को देखा है जो शीर्षासन के अभ्यासी हैं और उनकी सैकड़ों वर्ष की आयु होने पर भी वे सब प्रकार से स्वस्थ हैं । उनके शरीर को देखकर कोई कह नहीं सकता कि ये कोई वृद्ध होंगे पर युवाओं जैसी उनकी बातें रहती है । दांत, दाढ़ कान और नेत्रादि इन्द्रियों, पूर्ण रूपेण काम करती है यह उनके नैत्यिक व्या-याम का प्रभाव है इसके अतिरिक्त आसनों से पारमार्थिक लाभ होता है। इसके साथ ही जो लोग हठाभ्यास करते है जिनका लक्ष्य राजयोग है वे इन्हीं आसनों को करते हुए अपने शरीर में पूर्ण जागृति कर लेते हैं ।

योगासन एवं कुंडलिनी जागरण

अथवा

कुण्डलिनी प्रबोध

हमारे शरीर में योगाचार्यों के मतानुसार लगभग ७२ हजार नाड़ियों के अन्दर कुछ प्रमुख नाडियें है जो शरीर के विशेष - विशेष भागों में अपना काम करती हैं। इन सभी नाड़ियों में से १४ नाड़ियाँ प्रमुख मानी गई हैं।

सुषुम्णेड़ापिंगला च गान्धारी हस्ति जिह्वका । कूहू सरस्वती पूषा शांखिनी च पयस्विनी वारुणालम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी । एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिङ्गलेडासुषुम्णिका ॥

सुषुम्ना, इडा, पिंगला, गान्धारी, हस्त जिह्वा, कूहू सरस्वती, पूषा शंखनी, पयस्विनी वरुण, अलम्बुषा विश्वोदरी एवं यशस्वनी । ये चौदह नाड़ियां मुख्य मानी गई हैं। और इन चौदह में से ईड़ा पिंगला और सुषुम्ना ये

तीन प्रमुख नाड़ियें हैं। और इन तीनों में भी सुषुम्ना नाम की नाड़ी प्रमुख है। ये सुषुम्ना नाड़ी ही ब्रह्म द्वार है, सुषुम्ना द्वार को खोल करके ही जीवात्मा शक्ति रूप होकर ही शिव में लय हो जाता है। सुषुम्ना मूलाधार कमल से उठकर ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचती है और इस के मुख द्वार को कुण्डलिनी नाम की नाड़ी ३।१२ लपेटा लगाकर बैठी हुई है। सुषुम्ना द्वार में उसका मुख है। जब तक वह महा-शक्ति नहीं जग जाती तब तक मनुष्य देव-ताओं का पशु रहा करता है। उस महा-शक्ति को जगाकर ही देवता लोग देवता कह-लाते हैं क्योंकि उनकी शक्ति जागृत हुई होती है और शक्तिवान बन जाते हैं। मनुष्य की कुण्डलिनी सोई रहती है इसलिये वह दर-दर का भिखारी रहता है। दीन-हीन रहता है और शक्तवानों को विनय करके यथा तथा अपना जीवन निर्वाह करता है। वह महा-शक्ति कुण्डलिनी गुरुदेव की परम अनुकम्पा से प्राणायाम से या अन्य हठ योग की विविध साधनाओं से जग जाया करती है। हमारे योगासनों में इस प्रकार के भी आसन सम्मि-लित हैं जिनका अनवरत अभ्यास करने से महा-शक्ति कुण्डलिनी जग जाती है। और वह जीव सामर्थ्य को पा जाता है। भद्रासन पश्चिमो-त्तान, वज्रासन एवं शीर्षासन सभी आसन कुण्डलिनी प्रबोध करने वाले हैं।

बहुत से हठाभ्यासी महात्मा जिनको राजयोग में विशेष अभिरुचि नहीं है और जिन्होंने अपना लक्ष्य हठ योग ही बनाया है वे कुण्डलिनी जागरण के लिये हठ योग की ही विशेष साधनाओं में लगे रहते हैं। हमने श्री वृन्दावन में करोली वाली कुंज में एक ब्रह्मचारी को देखा जो वज्रासन, भद्रासन शक्ति चालिनी मुद्रा और शीर्षासन आदि सभी आसनों को कुण्डलिनी जागरण के लिये कई-कई घण्टे करते रहते थे। हमने उनके दर्शन प्राप्त किये और वार्तालाप में उन्होंने बतलाया कि वे कई वर्षों से इसी हठ साधना में लगे हुऐ हैं और इस विषय में उनका थोड़ा साही कार्य शेष रह गया है जो लगभग-वर्ष में पूरा हो जायेगा। दो वर्ष बाद जब हम उनके आश्रम पर गये तो पता चला उनके समीप के सम्पर्क वाले लोगों ने बतलाया कि उनके दृढ़ता पूर्वक हठाभ्यास से कुण्डलिनी प्रबोध हुआ और उसके फल स्वरूप उनके प्राण ब्रह्माण्ड में जाने लगे। उनको अनवर समाधि बनी रहने लगी। अन्ततः उनको तीव्र वैराग्य हुआ और वह कहीं वनों में चले गये। कहने का अभिप्राय: यह है कि योगासनों के जिन लाभों को दृष्टि पथ में रख करके योगाचार्यों ने लिखा हैं, वह लाभ केवक मात्र इसी लोक से सम्बन्ध रखने वाला नहीं प्रत्युत पर लोक लाभ का दाता भी है।

एक लघु कथा —

अहिंसा की परिसीमा–शत्रु–प्रेम

(जातक कथा सार)

एक जंगलमें एक हिरन रहता था। वह बहुत ही सुन्दर और सुशील था। सिर्फ पत्ते और घास खाता था। वह जंगलके सभी प्राणियोंके प्रति बड़ा दयालु था।

एक दिन एक राजा उसी जंगलमें शिकार खेलने आया। उसने एक सुन्दर हिरनको देख निशाना मारनेकी कोशिश की, पर हिरन भाग चला। राजाने भी उसका पीछा किया। अन्तमें दोनों एक गहरी खाईके पास जा पहुँचे। बलवान हिरन खाईको कूदकर पार कर गया; लेकिन घोड़ा उसीमें फँस गया। राजा घड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

जब हिरनको विश्वास हो गया कि राजा आगे नहीं बढ़ सकेगा तब उसने मुड़कर पीछे देखा। वहाँ घोड़ा तो खड़ा था, लेकिन राजाका पता नहीं। अब उसने नीचे नजर की, तो देखा कि राजा खाईमें गहरी चोटके दर्दसे छटपटा रहा है। शरीर में अनेक घाव लगे हैं। राजाका कष्ट देखकर हिरनका हृदय दयासे भर आया वह राजाकी सहायताके लिये नीचे जा पड़ा। यह देख राजा बहुत लज्जित हुआ। सोचा — यह कोई महान् जीव है जो शत्रुपर भी दया दिखलाता है। यह हमारे दुखसे दुखी है और मैं इतना नीच हूँ कि इसकी हत्या करना चाहता था।

राजाने हिरनसे अपनी करनीके लिये क्षमा माँगी। हिरन अपने पीठपर राजाको उपर ले आया। राजा इसके लिये बहुत कृतज्ञ हुआ। उसने हिरनको धन्यवाद देते हुए कहा – "आपने मेरी जान बचाई; इसलिये आप मेरे साथ चलकर आराममें दिन काटें।"

हिरनने जवाब दिया — "आप मनुष्य हैं और मैं पशु। मनुष्यका रहना दूसरा होता है और पशुका दूसरा। फिर भी यदि आप मुझे खुश करना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा करें कि कभी किसी मूक पशुका वध नहीं करेंगे। सभी जीव अपने प्राणोंसे प्रेम करते हैं, मृत्युसे सभी डरते हैं। जिस प्रकार आप दूसरोंसे अपनी जानकी रक्षा करना चाहते हैं, वैसे ही आपको दूसरों की भी रक्षा करनी चाहिये।"

यह सुनकर राजाकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह निकली। उसने प्रतिज्ञा की कि कभी वह जीव-हिंसा नहीं करेगा।

विनोबा - विचार

विद्या की महत्ता : अनन्त रूपी प्रभु : पाप और पुण्य

सुखार्थी चेत् त्यजेत् विद्यां
विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम् ।
सुखार्थिन कुतो विद्या कुतो
विद्यार्थिनः कुतो सुखम् ।।

सुखकी इच्छा करने वाले को विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है और विद्यार्थी (जो विद्या प्राप्त करना चाहता है) को सुख कैसे मिल सकता है ? इसका मतलब यह है कि कोई विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करना और आराम से खाना, पीना सोना भी चाहता है तो वह विद्वान् नहीं बन सकता। विद्या का आनंद महान् है। उसकी प्राप्त के लिए तो बड़े तड़के उठना पड़ता है, अध्ययन करना पड़ता है, तप करना पड़ता है, गुरुकी सेवा करनी पड़ती है, आहार कम करना पड़ता है। ये सारी तकलीफें उठाने पर ही विद्या प्राप्त हो सकती है।

× × ×

इस दुनिया में जबसे इन्सान की बस्ती हुई है, तबसे धर्मभावना निर्माण हुई है। मनुष्यों और जानवरों में यही फर्क है कि जानवरों में ऐसी धर्मभावना नहीं होती। हमारे सामने जो अनंत सृष्टि दिखाई दे रही है, वह परमात्मा ही है। परमात्मा अनंत रूप और अनंत नाम लेकर हमारे सामने लीला कर रहा है। इसलिये हमारा यह धर्म हो जाता कि यह जो अनंतरूपी प्रभु हमें दर्शन दे रहा है, इसकी सेवा करें अपने शरीर से मेहनत करके करके, दूसरों को सुख पहुँचायें इसी को धर्म कहते है। व्यासमुनिने बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं। एक दफा किसी ने उनसे पूछा कि 'आपके इतने सारे ग्रंथ हम कब पढ़ेंगे ? यह सारा समुद्र कौन पार करेगा ? इसलिये इसका उपाय बताइये।' उन्होने एक श्लोक में बताया :—

'अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम् ,
परोपकारः पुण्याय: पापाय परपीडनम् ।।'

'अठारह पुराणों का सार यही है कि दूसरो के सेवा करना पुण्य - मार्ग है और दूसरों को अपनी देह के वास्ते तकलीफ देना पापमार्ग है।'

× × ×

शेर अपनी देह के वास्ते जो भी प्राणी सामने आ जाये, उसे खा जाता है। वह यह

नहीं सोचता कि इसमें उस प्राणी को कितनी तकलीफ होती है क्योंकि वह अज्ञानी है वह अपने को देह से भिन्न नहीं पहचान सकता। लेकिन हमारी हालत वैसी नहीं है। सोचने से हमें मालूम हो जाता है कि हम देह से भिन्न हैं। इसीलिए हम समझ सकते हैं कि निष्काम - भावना और निरहंकार बुद्धि से सेवा करना ही पुण्यमार्ग है।

× × ×

यह मत कहिये कि हम तो कलियुग में हैं जिस युग में आप रहना चाहते हैं वह आपके लिए है।

युग हमें स्वरूप नहीं देता, हम युग को स्वरूप देने वाले हैं। हम कालपुरुष' हैं। यह सारी सृष्टि हमारे हाथ में पड़ी हुई है। गीता में कहा है —

'गामाविश्य च भूतानि
धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः
सोमोभूत्वा रसात्मक ।।'

'यह जो सारी जड़ सृष्टि है उसका धारण हम जीव कर रहे हैं।' सारी सृष्टि हमारे हाथ में है। हम चेतन हैं, हम उसको आकार देने वाले हैं। मिट्टी का घड़ा बनाना है तो मिट्टी शिकायत नहीं करती कि मुझे अमुक आकर दो। आप चाहें जो आकर उसे दे सकते हैं। इसी तरह आप युग को चाहे जो आकर दे सकते हैं। यह युग आपका है।

× × ×

अस्तेय और अपरिग्रह दोनों मिलकर अर्थशुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा तो मूल है। लेकिन आर्थिक क्षेत्र में दोनों का आविर्भाव अस्तेय और अपरिग्रह से ही हो सकता है - और आर्थिक क्षेत्र जीवन का बहुत ही बड़ा अंग है, इसलिए धर्मशास्त्र उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, बल्कि उसका नियमन और नियोजन करने की जिम्मेवारी धर्म-विचार पर आती है। इसलिए मनुने विशद रूप से कहा है :—

'यः अर्थशुचिः स शुचिः।'

जिसके जीवन में आर्थिक शुचिता है, उसका जीवन शुचि है।'

× × ×

विज्ञान और आत्मज्ञान – इन दो पंखोंपर मानव - पक्षी गगन विहार कर सकता है। विज्ञान हमारे लिए सब तरह की सहूलियतें पैदा करता है, लेकिन आत्मज्ञान के अंकुश के बिना विज्ञान का गलत उपयोग होता है।

इसी लिए हमने इस बात पर जोर दिया कि विज्ञान के साथ - साथ अहिंसा आनी चाहिए। अहिंसा आत्मा का गुण है। गीता कहती है :-

,य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो, नायंहन्ति न हन्यते ॥

× × ×

★ सत्यं - शिवं - सुन्दरम् ★

(श्री बनवासी)

एक समय ब्रह्मलोक में सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा अपने आसन पर विराजे थे। देवगण आस-पास बैठे सृष्टि के सृजन की कहानी स्वयं सृष्टि कर्त्ता के मुख से सुन रहे थे। इसी बीच कहीं से उनके ही पुत्र भृगु आकर बीच में कुछ बड़बड़ाने लगे।

× × ×

ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका ही यह युवा पुत्र बिना किसी शिष्टाचार का पालन किये सभा में यों ही व्यर्थ की बे-सिर पैर की बातें बक रहा है। मुझ से अथवा किसी अन्य से इसने अनुमति लेना भी आवश्यक न समझा और न इसने समुचित अभिवादन करने की मर्यादा का ही पालन किया।

× × ×

क्रोध बहुत आया पर भृगुजी उनके अपने ही पुत्र थे इसलिए वे उस क्रोध को मन में ही पीकर रह गये। भृगुजी भी अवसर देखकर उस दरबार से चले आये। और यहाँ से चलकर वे सीधे कैलाश पर्वत पर भगवान शंकर की सभा में जा पहुँचे।

× × ×

भगवान शङ्कर जी ने जब भृगुजी को आता हुआ देखा तो अपने आसन से उठकर उनका आलिङ्गन करने के लिये अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर आगे आये। भृगुजी चार कदम पीछे हटगये और बोले मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता। तुम मर्यादाहीन तथा भले बुरे का विवेक न करने वाले हो।

× × ×

शंङ्कर जी को भृगु जी की इस अशिष्टता पर बड़ा क्रोध आया। यहाँ तक कि क्रोधावेश में वे अपना त्रिशूल लेकर भृगु का सिर धड़ अलग करने को तत्पर हो गये। पर इसी

बीच में देवी पार्वती ने आकर उनको प्राण-रक्षा की और अपने पतिदेव के क्रोध को यह कहकर शान्त किया कि यह अबोध ब्राह्मण बालक बध योग्य नहीं है।

× × ×

भृगुजी इस तनातनी के वातावरण को छोड़कर अपनी यात्रा पर आगे चल दिये और फिर वे भगवान विष्णु के उस लोक में जा पहुंचे जहाँ शेष शय्या पर वे लक्ष्मीजी के साथ एकान्त सेवन का रहे थे।

× × ×

भृगु जी सीधे उनके अन्त:पु कर में विना पूछे ही घुस गये और घुसते ही भगवान विष्णु की छाती में जोर से एक लात जमादी। लक्ष्मी जी यह दृश्य देखकर भौचकी रह गईं। लेकिन भगवान विष्णु छाती पर हुए भृगु के पाद प्रहार की चिन्ता न कर झटपट उठे और भृगु जी के उस पैर को पकड़ कर जिससे कि उन्होंने प्रहार किया था, कहने लगे-ऋषि कुमार कहीं आपके कोमल चरण में चोट तो नहीं आगई। मुझे अपनी नहीं आपकी चिन्ता है।

× × ×

विष्णु भगवान का यह सौजन्य और सद् भाव भृगु के अन्तर में अंकित होगया। वे नत मस्तक होकर उनकी सराहना और वन्दना करने लगे। एवं कहने लगे देवाधिदेव आप सचमुच लोकपाल हैं। विना विनम्रता के इतना बड़ा-बड़प्पन किसे कैसे मिल पाता है ?

× ×

भृग ने आगे कहा महामहिम मैं तो ऋषि-मण्डल के दूत के रूप में यह परीक्षा लेने निकला था कि ब्रह्मा विष्णु और महेश में कौन देव बड़ा है। मैंने अपनी यात्रा में यह मालूम किया कि इन तीनों में सबसे बड़े आपही हैं। ऋषि' मण्डल का अपनी यात्रा की यही रिपोर्ट देने में जा रहा हूँ।

× × ×

भृगजी भगवान विष्णु की महत्ता का गुणगान करते हुए ऋषि-मण्डल से मिले और बोले मेरी परीक्षा में भगवान विष्णु हैं सबसे बड़े हैं पर दूसरे को भी कोई छोटा नहीं कह सकता।

आध्यात्मिक उन्नति और सद्

(स्व. श्री मेहरे बाबा)

जब संसारासक्त मनुष्य के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन हो जाता है तभी उसकी आध्यात्मिक उन्नति शुरू होती है। संसारासक्त मनुष्य शरीर के लिए जीता है। उसके कुछ उद्योग ऐसे भी होतेहैं जिनका शरीर से कोई सीधा संबंध नहीं मालूम होता किंतु विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उसके ऐसे उद्योग भी शरीर से संबंध रखने वाली इच्छाओं से प्रेरित होते हैं। जैसे वह खाने के लिये जीता है: वह जीवित रहने के लिए खाता नहीं है। शरीरिक भोग से उच्चतर जीवन है यह वह नहीं जानता; अतएव शरीरिक सुख तथा शारीरिक आमोद-प्रमोद ही उसके समस्त उद्योगों के लक्ष्य होते हैं। किन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है, कि शरीर से भी सारवान वस्तु आत्मा है तब वह आत्मा को प्रधान तथा शरीर को गौण महत्व देने लगता है। अब वह शरीर को साधन मानता है, तथा उच्चतर जीवन की अनुभूति में उसे सहायक मानकर वह उसकी रक्षा करता है। उसका जो शरीर अब तक सच्चे आध्यात्मिक जीवन का विघ्न था, अब वह उस जीवन की अभिव्यक्ति के लिये एक उपकारण बन जाता है, अर्थात् आध्यात्मिक जीवन का अनुभव करने के लिए वह शरीर पर संयम करता है। उसके दृष्टिकोण में जब यह परिवर्तन हो जाता है तब फिर उसके शरीर की बाधकता उत्तरोत्तर कम तथा उसकी सहायता उत्तरोतर अधिक होती जाती है। इस स्थित में वह शरीर की आवश्यकताएं देहात्मभाव की आसक्ति – पूर्ण भावना से पूरी नहीं करता, किंतु वह उसकी आवश्यकताओं को उसी भाव से पूर्ण करता है, जिस भाव से ड्राइव्हर रेल्वे एंजिन में पानी और कोयला भरता है: ताकि वह बराबर चलता रहे।

मनुष्य यह प्रश्न करता है, कि मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य

क्या है ?

किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अज्ञात-भाव से प्रेम तथा घृणा करता है ? किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह नाना सुखों और दुःखों का अनुभव करता है ?

जीवन के अंतिम लक्ष्य की खोज के साथ ही साथ आध्यात्मिक उन्नति आरंभ होती है। यद्यपि अपनी भवितव्यता के दुर्बोध्य तथा प्रबल आकर्षण से उसका जीवन आंदोलित हो जाता है, और जीवन का अंतिम लक्ष्य उसे अपनी ओर बलात् खींचता है, जिसके परिणाम स्वरूप वह उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए खोज शुरू कर देता है तथापि सत्यानुभूति के पर्वत के उच्चतम शिखर पर पहुचने में उसे बड़ा लंबा समय लग जाता है। उसे मानों पर्वत की खड़ी दीवार पर चढ़ना पड़ता है। पग-पग पर उसे गिरने और फिसलने का डर रहता है। अति उत्तुंग शिखर तक पहुंचने का जो लोग प्रयत्न करते हैं, उन्हें एक उंचाई के बाद दूसरी उंचाई पार करनी पड़ती है, उन्हें एक एक चढ़ाई लांघ लेनेपर दूसरी चढ़ाई लांघना पड़ती है।

काफी बड़ी उंचाई पर चढ़ने में यदि कोई मनुष्य सफल हो भी जाता है, तो भी उसके गिरने का डर बना रहता है; एक जरासी भूल उसने की कि वह धड़ाम से नीचे गिर जाता है, और उसी स्थान से उसे फिर चढ़ना पड़ता है जिस स्थान से उसने पहिले चढ़ना शुरू किया था।

अतः साधक तब तक सुरक्षित नहीं रहता, जब तक उसे गुरु का पथ-प्रदर्शन नहीं प्राप्त होता। गुरु लक्ष्य स्थान को पहुंच चुका रहता है। पथ की विविधबाधाओं, कंटक-कठिनाईयों तथा शिला-चट्टानों का उसे पूरा ज्ञान रहता है, अतः वह साधक को गिरने-टकराने से बचा सकता है, तथा पथ के संकटों और कष्टों से उसकी रक्षा करता हुआ, वह उसे लक्ष्य — स्थान तक पहुंचा सकता है।

अपनी-अपनी बात

मेरे सद्गुरुदेव एवं उनकी विलक्षण शक्ति

[श्री रमेश कुशवाह डी.ई.ई.बी.ई.इलै. (टेली.) -]

जीवन में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जिन्हें भुलाना चाह कर भी हम कभी भुला नहीं सकते। पूर्व जन्म के संस्कारों आदि के प्रभाव से जीवन में यदाकदा ऐसे सिद्ध महापुरुषों के दर्शन भी हो जाया करते हैं जो साधारण मनुष्य के लिए सर्वथा कठिन ही हैं। यह बात और है कुछ लोग दर्शनों को ही अपना सौभाग्य मान लेते हैं परन्तु महा सौभाग्यशाली तो वे हैं जिन पर सिद्ध महापुरुष न केवल दया - दृष्टि ही करते हैं अपितु हमेशा के लिए अपने चरण-कमलों में स्थान भी दे देते हैं।

मैं नहीं समझता हूं हमारे कौन से पूर्व जन्म के संस्कार थे अथवा दीनबन्धु की विशेष कृपा थी जिसके फलस्वरूप मेरे परिवार को एवं मुझे श्री - चरणों में स्थान मिला-स्थान मिलने का मतलब ही यह था कि दीनबन्धु का हर समय वरदहस्त हमारे ऊपर रहना।

समय-समय पर श्री गुरुदेव ' योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की मेरे परिवार एवं अन्य गुरु भाईयों के पर ऐसी विलक्षण कृपायें हुई जिनके स्मरण मात्र से ही शरीर रोमांचित हो उठता है एवं मन यह सोचने के लिए मजबूर हो जाता है कि श्री गुरुदेव को हम जितना समझते हैं उससे भी कहीं ऊपर वे साक्षात् ईश्वरावतार ही हैं।

जीवन-दान

बात आज से कई वर्ष पूर्व सन् १९६० की है। उन दिनों मेरी छोटी बहन प्रभा की तबीयत कुछ महीनों से खराब चल रही थी। कई चिकित्सकों का इलाज कराया गया परन्तु फिर भी रोग बजाय ठीक होने के उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उसके कष्टों को देखकर मन को अति कष्ट होता था। परन्तु यह सोचकर कि ये पूर्व जन्म के कुसंस्कारों के भुगतान हैं और फिर श्री गुरुदेव जी के आशीर्वाद से ये एक न एक दिन ठीक तो अवश्य ही हो जायेगी, अनिष्ट की आशंका तो स्वप्न में हो ही नहीं सकती बस यही दिल में एक मात्र धैर्य था।

मई या जून का महीना था सायंकाल का समय था कि यकायक प्रभा की हालत बहुत अधिक खराब हो गई। डाक्टर को बुलाया गया। उसने हालत गंभीर देखकर फौरन ही ग्लूकोज (glucose) का इन्जेक्शन लगाया। ग्लूकोज इन्जेक्शन के बारे में यह बताया जाता है कि यदि नब्ज में न लग कर गलत स्थान पर लग जाये तो बहुत हानिकारक सिद्ध होता है। और हुआ भी यही। जल्दी में इन्जेक्शन के उचित स्थान पर न लगने से उसने अपना दुःप्रभाव दिखाना

शुरु कर दिया। शनैः शनैः प्रभा की हालत खराब होने लगी। नब्ज की गति धीमी होने लगी थी एवं हाथ पैर भी अकड़ने लगे थे।

डाक्टर एवं उनका कम्पाउण्डर घबड़ाकर जल्दी जल्दी बाहों एवं पैरों पर अपने हाथों से रगड़ रहे थे परन्तु उनकी प्रत्येक कोशिश बेकार ही गई अन्त में डाक्टर ने अपनी पूर्ण निराशा जाहिर करदी।

यह सुनकर घर में सब लोग बहुत अधिक घबड़ागए एवं स्वतः ही अनिष्ट की आशंका से घर पर सभी लोग धैर्य खोकर रोने लगे। वह हालत देख कर पिताजी एकाएक हम लोगों से कहने लगे। ये रोना किस लिए? क्या अपने गुरुजी के ऊपर विश्वास नहीं है? प्रभा ठीक होगी और अवश्य ठीक होगी। यह कह कर वे यकायक पूजागृह में गए तथा वहाँ से पूज्य सद्गुरुदेव जी का चित्र एवं माला जो कि श्री सद्गुरु देव ने ही आश्रम पर दी थी, को लाकर प्रभा के मस्तक पर एवं एक माला उसके गले में डाल दी।

एकाएक ही चमत्कारिक दृश्य देखने में आया। प्रभा जो कि कुछ क्षण पहले मरणासन्न अवस्था में थी धीरे धीरे उसकी हालत ठीक होती प्रतीत हुई तथा शीघ्र ही — मुझे क्यों बुलाया क्यों बुलाया–कहते हुए उसने आंखे खोल दीं।

उस की प्रसन्नता का हम वर्णन नहीं कर सकते। श्री गुरुदेव जी के स्मरण मात्र से जो चमत्कार देखने को मिला था उससे हमारे दिलों में यह तीव्र विश्वास जाग्रत हो गया कि महाराज जी प्रत्येक स्थान पर हमारे साथ हैं उनकी यदि कृपा प्राप्त करनी है तो आवश्यकता है केवल मात्र उनके चरणों में विश्वास की।

प्रभा से जब इसका रहस्य पूछा कि तुमने मुझे क्यों बुलाया, क्यों बुलाया किस लिए बुलाया क्यों कह रही थी तो उसने इस बारे में अपनी सर्वथा अनभिज्ञता प्रकट की। केवल उसने इतना ही बताया मुझे उस समय महाराज जी के दर्शन हो रहे थे उसी समय मेरी आँख खुल गई।

डाक्टर जो कि उस समय वहीं मौजूद थे यह दृश्य देख कर चकित रह गए एवं पुनः उपचार करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु पिताजी ने यह कह कर इन्कार कर दिया–रहने दीजिये अब इलाज की कोई आवश्यकता नहीं है।तथा मन में सोचा चिकित्सकों के महाचिकित्सक ने ही जब इलाज करना चालू कर दिया फिर अब इन डाक्टर की क्या आवश्यकता!

और हुआ भी यही। उसी दिन महाराज जी के चरण - कमलों में पूर्ण स्थिति से अवगत कराते हुए एक पत्र लिखा। उसके सात दिन बाद ही श्री - चरणों से एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें पूज्य महाराज जी ने लिखा था, वे आनंदकंद श्री प्रभुजी अपने बच्चों पर सदैव कृपा करते है लिखो अब प्रभा का स्वास्थ्य कैसा है। उम्मीद है अब वह बिलकुल ठीक

होगी।

और वास्तविकता भी तो यही थी प्रभा बिलकुल ठीक हो गई थी।

दुष्टता का दण्ड

उपरोक्त घटना के बाद तो श्री चरणों में विशेष अनुराग हो गया था जिसको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इतने महान शक्तिशाली गुरुदेव को पालेने पर दिल में एक गर्व सा था। पूर्ण श्रद्धा एवं लगन के साथ प्रातः सायं आरती ध्यान पूजन का कार्यक्रम नियमित रूप से चल रहा था। आरती में केवल प्रथम बार आने पर भी हमारे यहाँ कुछ व्यक्तियों का ध्यान 'प्रभो पाहिमाम नमामीश शंभो- की पंक्तियों को कहते हुए लग जाया करता था। अतः दीनबन्धु की उपस्थिति का आभास हमें किसी न किसी रूप में होता ही रहता था।

× × ×

वैसे तो महाराज जी सर्व शक्तिमान दया के सागर हैं ही। उन्हें कभी क्रोध तो आता ही नहीं है परन्तु यदि उनके सेवकों के साथ कोई दुष्ट दुष्टता करे तो उसको विशेष परिस्थितियों में कठोर दण्ड देने से भी नहीं चूकते। इसी से सम्बन्धित एक सत्य घटना है।

उन दिनों मैं ग्वालियर में बी.एस.सी.पार्ट एक का एक छात्र था। मेरे साथ ही मेरे एक सहपाठी श्री अशोक नार्वे भी पढ़ा करते थे, वे भी आश्रम पर अक्सर आया करते थे। एक बार की बात है सुबह के समय अशोक जी अपने एक अभिन्न मित्र श्री नारायण श्रीवास्तव को लेकर आये एवं उन्होंने बताया कि ये बेचारे आजकल एक बहुत बड़ी मुसीबत में फंस गए हैं। नारायण जी जहाँ रहते हैं वहाँ उनके पास ही एक व्यक्ति और रहता है जिससे उनके परिवार के सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। सुना तो यह जाता है कि उस व्यक्ति के पास कुछ ऐसी दुष्ट सिद्धियां है जिनके द्वारा वह शीघ्र ही इनका अनिष्ट अवश्य करेगा उनके इस विश्वास का कारण यह था कि नारायण के बड़े भाई साहब के ऊपर भी उस व्यक्ति ने घात नामक किसी सिद्धी का प्रयोग किया था जिसके फलस्वरूप वे सुबह अपने कमरे में मृत पाये गए थे।

बात वास्तव में काफी चिंताजनक थी, मैंने उन्हें सलाह दी कि आप मेरे गुरुदेव जी के चरण-कमलों में पहुँच जाओ जो कि शीघ्र ही एकान्तवास से आश्रम पर वापिस आने वाले हैं। उनकी कृपा से तुम्हारा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकेगा।

इस पर नारायण ने कहा — पर सुनने में यह आया है कि वह व्यक्ति आज रात को ही मेरे ऊपर घात का प्रयोग करेगा।

तब तुम ऐसा करो पूर्ण विश्वास के साथ मेरे यहाँ रात्रि आरती में सम्मिलित होना। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे गुरुदेव तुम्हारी अवश्य ही रक्षा करेंगे मैंने = कहा।

रात्री को नारायण आरती में सम्मिलित हुआ एवं श्री गुरुदेव तथा आनंदकंद महाप्रभुजी पर पूर्ण श्रद्धा के साथ माला भी अर्पण की। आरती के उपरान्त प्रसाद पाकर एवं दीनबन्धु से दया की प्रार्थना कर के वह चला गया। जाते समय उस से मेरे पिताजी ने कह दिया था "श्री रामलाल प्रभवे नमः" का रात्री को जाप करते हुए सोजाना वे दयालु हैं निसंदेह वे दया करेंगे।

दूसरे दिन सुबह लगभग आठ बजे नारायण बहुत अधिक प्रसन्नचित्त दौड़ा हुआ आया एवं उसने बताया उस व्यक्ति की तो रात को मृत्यु हो गई।

जरूर उस व्यक्ति ने अपनी दुष्ट शक्तियों का प्रयोग नारायण पर किया होगा परन्तु वे शक्तियां नारायण का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती थीं। दीनबन्धु के चरणों में विश्वास जो किया था नारायण ने। हाँ उस दुष्ट को अपने किए की उचित ही सजा मिली। मेरा विचार है जिस शक्ति के प्रयोग से वह नारायण की जान लेना चाहता था उसका शिकार वह खुद ही बन गया।

दिव्य दृष्टि

मानने वाले के लिए तो पत्थर भी ईश्वर होता है फिर यह दीनबन्धु तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर ही हैं। हमारे इतिहास हमारा पुराण साक्षी है मनुष्य यदि समय रहते सचेत होगया होता तो हमारे देश की अवनति न होती। यदि अमेरिका अपोलो ११ के द्वारा चन्द्रमा पर पहुँच चुका है तो हमारा देश दिन प्रति दिन अवनति के गर्त में गिरता जारहा है वह देश जिसने हमेशा ही अन्य देशों के सामने भूत काल में अपनी विद्वता की धाक जमा रखी थी आज उसका पतन क्यों और किस लिए ? बहुधा यह प्रश्न हमारे सामने आता रहता है। यदि इस पर गहनता से विचार किया जाये तो शायद हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि कारण मात्र यही है कि हम अपनी स्वतः को महान संक्रांत महापुरुषों के उपदेशों को उपेक्षित करके अन्धाधुंध विदेशी नकल करने में लग गए। रेल के इंजन के पीछे लगे डिब्बे (Compartment) गाड़ी की गति कुछ भी क्यों न हो हमेशा उसके पीछे ही रहेंगे तो फिर विदेशों की नकल करके क्या हम उनसे ऊपर उठने की आशा कर सकते हैं।

हमारे देश में था क्या नहीं ? आज के मिग या सैबरजेट की तुलना में 'पुष्पक' कहीं आगे था। दूर दृश्य दर्शक (TeLevison) तो पूर्णतः इलैक्ट्रिक सर्किट पर आधारित है। किसी भी उपकरण में खराबी होने पर बन्द। जब कि योग के द्वारा दिव्यदृष्टि अनायास ही पूर्व महापुरुषों को प्राप्त थी। संजय द्वारा महाभारत का पूर्ण दृश्य देखना इसका अटल प्रमाण है। यह महाविद्या हमारे देश से लुप्त तो नहीं हुई है पर हाँ यदि इसी प्रकार से

सोते रहे तो इसका परिणाम भी यही होगा। जो श्री महाप्रभु रामलालजी के अन्तर्धान होने के उपरान्त हुआ अर्थात् हम उनके आगे नहीं अपितु बाद में ही समझ सके कि वे क्या थे। दीन बन्धु श्री सद्गुरुदेव भी इस शक्ति के पूर्ण ज्ञाता हैं जो कि निम्न लिखित घटना से सिद्ध हो जाता है।

आश्रम पर गुरुदेव महाराज जी के शिष्यों में ही एक भक्त पहाड़गढ़ के श्री परमसिंह जी हैं। पहाड़गढ़ में उनका काफी बड़ा किला है। ऐसा उनका विश्वास था कि उनके पूर्वज अपने राज्य काल के दौरान एक विशाल धन का भंडार धरती के नीचे किले में किसी स्थान पर सुरक्षित रख गये हैं। इसके लिए उन्होंने कई पंडितों एवं इस प्रकार के धन की खोज करने वाले ज्ञाताओं के द्वारा पूरी पूरी जानकारी की पर उन्हें हमेशा असफलता ही हाथ लगी।

अन्त में दीनबन्धु श्री गुरुदेव महाराज जी से आश्रम पर आकर प्रार्थना की। उस समय सुबह के ८ या ९ का समय था महाराज जी ने उन्हें बैठने के लिए कहा और स्वयम् अपने कमरे में चले गए तथा दरवाजे भी बन्द कर लिए।

कोई एक या दो घण्टों के उपरान्त महाराज जी कमरे से बाहर निकले एवं उन्हीं के शब्दों में "लल्ला पदमसिंह वैसे तो वसुन्धरा असीम रत्नों की खान है परन्तु तुम्हारे किले में मैंने प्रत्येक जगह देख लिया है परन्तु कहीं भी मुझे भूमिगत दौलत का पता न चला अतः तुम्हें इस बारे में आशा छोड़ देनी चाहिये।"

अनायास पर अनजाने में दीनबन्धु के मुखारविन्दु से महान सत्य का पता चल गया 'मैंने हर जगह देखा।' अनजाने में इसलिए के गुरुदेव किसी भी प्रकार का चमत्कार सांसारिक दिखावे के लिए कभी नहीं करते। परन्तु एक बात तो निश्चय होगई महाराज जी को दूर दृष्टि अवश्य ही प्राप्त है।

गुरु आज्ञा को प्रधानता

बहुधा बातों बातों ही में महाराज जी कभी-कभी कहा करते थे यदि गुरु समर्थ है तो उसे अपने शिष्यों का पूर्ण ख्याल हमेशा ही रहता है। मुझे याद है महाराज जी से कभी कभी कुछ गुरु भक्त शिष्य यदा कदा सवाल पूछ बैठा करते थे — महाराज जी मैं आपकी शरण में आगया हूँ फिर भी मुझे ये परेशानी है वो परेशानी है। कहीं मैं बीमार रहता हूँ, कभी कुछ कभी कुछ !

बात वास्तव में कुछ सत्य सी प्रतीत होती है और उपरोक्त बात का कितना सीधा जवाब महाराज जी ने दिया था —हाँ लल्ला यह तो मैं भी सोचता हूँ जो बच्चा मेरा सबसे प्रिय होता है उसी पर मुसीबतें न मालूम क्यों अधिक आती हैं।

कितना भोलापन था महाराज जी के शब्दों में सब पुराणों वेदों के ज्ञात होते हुए भी

इतनी अनभिज्ञता ? यही तो दीनबन्धु की महानता है।

इस उपरोक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं महाराज जी ने ही समय समय पर अपने प्रवचनों के द्वारा दिया भी था। जो कुछ इस प्रकार से था।

'श्री गुरुदेव तो हमेशा यही चाहते हैं कि उनका बच्चा जन्म जन्मान्तरों के कष्टों से हमेशा के लिए मुक्ति पाले। आज यदि किसी बच्चे के कष्टों को दूर करने के लिए वे अपनी शक्ति का प्रयोग भी करते हैं तो यह निश्चय है इस जन्म में तो उसे अवश्य ही कष्टों से मुक्ति मिल जायेगी परन्तु पुनः उन्हीं संस्कारों की पूर्ति हेतु जन्म तो लेना ही होगा।'

श्री गुरुदेव कभी कहा करते हैं। गुरु का काम तो धोबी से भी खराब है। धोबी तो चादर को साफ कर देता है फिर चाहे वह साफ रहे या गन्दी, पर गुरु तो शरीर के कर्मों की इस प्रकार से सफाई करता है कि कहीं पुनः वे कर्म उस शरीर को गन्दा न कर दें। अब यह तो निश्चय ही है यदि गुरुदेव की किसी सेवक पर विशेष कृपा हुई तो उनके मन की भावना भी यह होगी मेरा यह बच्चा अपने दुष्कर्मों से जो कष्ट भुगत रहा है उसका भुगतान शीघ्र ही हो जावे। और इसका परिणाम निश्चित रूप से यही होगा। सेवक पर रोगों आदि का आक्रमण होगा। हां यह निश्चित है कि श्री गुरु कृपा से वे सूक्ष्मरूप में ही शरीर को कष्ट देंगे जैसे कि यदि भुगतानों के अनुसार छत से गिर कर मृत्यु का योग है तो गुरु कृपा से बजाय छत के भुगतान धरती पर गिर कर ही सूक्ष्म रूप में पूरा हो जायेगा।

अब यह बात दूसरी है। अज्ञानता - बस कुछ लोग यह समझ बैठते हैं कि यदि गुरुजी इन बातों से मुक्ती नहीं दिला सकते तो गुरु ही कैसे ? उपरोक्त बात के लिए मैं भगवान राम का प्रसंग लेता हूँ। वे ईश्वर अवतार पूर्ण समर्थ थे फिर उनके असीम भक्त जटायू को रावण के आगे क्यों घायल हो जाना पड़ा। उसके साथ तो राम की भक्ति थी। इसी प्रकार महायोगेश्वर श्रीकृष्ण हमारे सामने आते हैं। पूर्ण योगी होते हुए भी उनके पांडव भक्तों को जंगल-जंगल क्यों भटकना पड़ा। हाँ, इस प्रकरण में भी कुछ नास्तिक यह सवाल उठाने लगते हैं कि हम राम या कृष्ण को ईश्वर अवतार मानते ही नहीं। यदि यह बात है तो भगवान राम के द्वार अहिल्या का उद्धार कैसे हुआ, द्रौपदी का चीर कृष्ण ने कैसे बढ़ाया।

कहने का तात्पर्य यह है यही बात श्री गुरु देव महाराज जी के बारे में भी लागू होती है। वे पूर्ण समर्थ योगिराज हैं उनके लिए प्रत्येक कार्य पूर्ण संभव है परन्तु कष्टों का आना भुगतानों से सम्बन्धित है।

जहां तक दीनबन्धु की पूर्ण समर्थता का प्रश्न है उन्होंने अपने एक सेवक पर दया करके यह दिखा दिया था कि वे क्या हैं इसका

प्रत्यक्ष उदाहरण निम्न लिखित है।

जिला कानपुर में 'मुगरिहा' नाम का एक ग्राम है। मेरे मामा जी (पता इस कारण दिया है जिससे यदि कोई भाई चाहें तो तो सत्यता का पता लगा सकें) श्री राजकुमार सिंह, महुआ खेड़ा जि० एटा के श्वसुर सा० श्री फतहसिंह जो वहीं के निवासी थे जिनका कि स्वर्गवास अभी कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ है। जिस समय वे जीवित एवं पूर्ण स्वस्थ थे उस समय की बात है।

ग्राम मुगरिहा अथवा उसके पास ही कहीं किसी दूसरी जगह एक सिद्ध महात्मा जिन्हें देवी माँ का इष्ट था रहते थे। बहुधा होता यह था कि वे अनायास है किसी स्त्री या पुरुष के बारे में सत्य भविष्यवाणी कर दिया करते थे जो कि पत्थर की लकीर होती थी।

गाँव में महात्माजी का काफी नाम था उनके भक्तों में से फतहसिंह जी भी थे। सायं काल का समय था। महात्माजी का नित्य कार्यक्रम के अनुसार प्रवचन चल रहा था। भक्त गण पूर्ण भक्ति के साथ उनका प्रवचन सुन रहे थे।

प्रवचन समाप्त होने पर उन्होंने श्री फतहसिंह से कहा-बच्चा तेरा तो मृत्यु काल बिलकुल निकट आगया है तू अमुक महीने में अमुक दिन बीमार पड़ेगा एवं वह तेरी बीमारी बढ़ती ही जायेगी। वह ठीक न हो सकेगी और एक निश्चित तारीख पर जो कि उन महात्मा जी ने बताई थी किसी भी प्रकार तू बचेगा नहीं, तुझे जितना-पूजा पाठ करना है करले।

यह सुन कर फतहसिंह जी को बहुत अधिक दुःख हुआ। बड़े उदास से घर आये, पर कुछ दिनों के उपरान्त ही सब कुछ सामान्यसा हो गया और वे इस बात को भी भूल गए।

उपरोक्त भविष्यवाणी के कुछ महीनों बाद की बात है। श्री फतहसिंह जी बीमार हो गए, जब वे बीमार हुए तब उन्हें पुनः उपरोक्त महात्मा जी की बात याद आगई और भविष्यवाणी के अनुसार इलाज कराने पर भी कोई फायदा नहीं हुआ। तथा रोग भी शनैः-शनैः बढ़ता ही गया। अब उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि महात्मा जी की बताई तिथि को मैं अवश्य ही नहीं रहूँगा।

कहाँ तो श्री फतहसिंह जी का स्वस्थ शरीर था और कहाँ अब सूख कर आधे भी नहीं रहे थे। वे पहले से बहुत अधिक कमजोर हो गए थे। इधर जब उन्होंने देखा कि अब मेरा अन्तकाल तो नजदीक है ही। एक बार अपने सभी प्रिय सम्बन्धियों से मिलने की इच्छा से वे सभी के पास गए। एवं इसी लिए वे महुआखेड़ा भी आए। उस समय तक उनका स्वास्थ्य इतना अधिक खराब हो चुका था कि थोड़ी दूर चलना भी उनके लिए बहुत कठिन काम था।

मामाजी ने जब उन्हें इस हालत में देखा तो देख कर आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने पूछा — यह आप की क्या हालत हो गई ? यदि आप बीमार थे तो हमें क्यों नहीं लिखा हम स्वयं आपके पास आते।

इसके उपरान्त श्री फतहसिंह जी ने अपनी पूरी कहानी एवं उन देवी के दृष्ट वाले महात्माजी की भविष्यवाणी के बारे में भी बताया और यह भी बता दिया कि अब मेरा समय पूर्ण होने में थोड़ा ही काल शेष रहा है।

मामाजी यह सुनकर बहुत हँसे तथा बोले मैं मानता हूँ वे महात्मा पहुँचे हुए एवं शक्तिमान भी हैं परन्तु फिर भी मेरे गुरुदेव सर्व शक्तिवान हैं उनकी दया आपके ऊपर होजाये फिर काल तो क्या देवता भी कुछ करनेसे से पहले गुरुदेव की आज्ञा लेंगे।

फतहसिंह जी चूँकि गुरुदेव की शक्ति से पूर्णतः अनभिज्ञ थे अतः अविश्वास के स्वर में बोले — लल्लू तुम कुछ भी क्यों न कहो पर मुझे पूरी उम्मीद है कि मैं अब बच नहीं सकूँगा। उन महात्मा की कोई बात आज तक तो असत्य हुई नहीं है, फिर भी जीने की लालसा किसे नहीं होती। डूबते को तिनका भी सहारा होता है मुझे महाराज जी की शरण में ले चलो, पर हाँ उन्होंने पुनः कहा —मैं चलने-फिरने में बिलकुल असमर्थ हूँ।

इसकी आप चिन्ता मत करिए मैं आपको जैसे भी होगा ले चलूँगा — यह कह कर मामाजी ने उसी समय एक पत्र श्री गुरुदेव महाराज जी के लिए डाल दिया। उन्हें सभी बातों से अवगत कराते हुए श्री फतहसिंह जी को दीक्षा देने का अनुरोध भी किया था। वे जानते थे यह एक ऐसा अटूट गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है जिसमें बँध जाने पर शिष्य का पूर्ण भार गुरुदेव पर ही आ जाता है।

शीघ्र ही कुछ दिनों के उपरान्त दीनबन्धु श्री गुरुदेव का जवाब आगया जिसमें उन्होंने अपनी सहर्ष स्वीकृति एवं आशीर्वाद भी दिया था।

पत्र मिलते ही श्री फतहसिंह जी में शक्ति का विशेष संचार सा हुआ एवं मामाजी श्री फतहसिंह जी को लेकर आश्रम पहुँचे। दीक्षा के उपरान्त श्री सद्गुरुदेव जी का प्रसाद एवं आशीर्वाद भी मिला। लल्ला फतहसिंह तूने जिस दिन के बारे में बताया है उस दिन के लिए मेरा आशीर्वाद है तू निश्चिन्त होकर घर जा, तेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।

आश्रम पर कुछ दिनों रहने के उपरान्त श्री फतहसिंह जी का स्वास्थ्य बहुत कुछ ठीक हो चुका था एवं श्री गुरुदेव की शक्ति के प्रति मन में विश्वास-भाव भी जाग्रत हो गया था वे प्रसन्न चित अपने घर मुगरिहा लौट आए।

अब वह दिन भी आया जिस दिन के लिए महात्माजी ने फतहसिंह जी के मरण

की भविष्यवाणी की थी।

उन महात्माजी के पास भक्तों की भीड़ लगी हुई थी। बड़े उदास स्वर में महात्माजी ने अपने भक्तों से कहा — फतहसिंह बहुत अच्छा आदमी था। बेचारा आज खतम हो गया।

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि एक भक्त बीच में ही बोल उठा — क्या कहते हैं आप। मैं तो उन्हें अभी अभी देखकर आरहा हूँ खेतों की ओर टहलने जा रहे थे।

महात्माजी चौंक कर एक दम उठ बैठे- क्या कहा ! तूने देखा था !! यह कभी संभव हो ही नहीं सकता !!!

मेरी भविष्य वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती। यह मेरा नहीं देवीमां का सन्देश था। वे असत्य कैसे कह सकती हैं, भगवन मैं ठीक कह रहा हूँ - उस भक्त ने दीनता से कहा। मुझे इतना अवश्य मालूम है।वे अपने दामाद के साथ किसी सिद्ध गुफा आश्रम पर योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज जी के पास गए थे जिन्होंने उन्हें जीवन-दान का शायद वरदान भी दिया था। दूसरेभक्त ने बात पूर्ण की।

वे महात्मा यह सुनकर शान्त हो गए एवं ध्यानावस्थित होकर बैठ गए। कुछ समय उपरान्त आँखें खोल कर बड़े शान्त स्वर में केवल इतना ही कहा-हाँ वह सर्व शक्तिमान हैं जो चाहे कर सकते हैं. तब यह बात अवश्य ही सत्य होगी।

उसके कई वर्षों बाद तक श्री फतहसिंह जी नियमित रूप से आश्रम आते रहे, गुरुचरणों में अपार श्रद्धा थी पर ध्यान इत्यादि में मन कुछ कम ही लगता था।

समय बीतता गया, वर्ष निकल गए फिर एकाएक श्री फतहसिंह जी को न मालूम क्या हुआ। घर पर खाद्य सामग्री, घी, तेल, मसाले इत्यादि एकत्रित करने लगे। जब घर पर कोई पूछता यह किस लिए तो बस एक छोटा सा जवाब होता शीघ्र ही इसकी आवश्यकता होगी।

घर में कोई उनके विचारों को समझ नहीं सका। इसके साथ-साथ ही एक विचित्र बात और भी घर वालों के देखने में आने लगी कि पहले तो वे अधिक पूजापाठ किया नहीं करते थे जब कि अब अधिक समय पूजा-गृह में श्री आनंदकंद प्रभुजी एवं श्री गुरुदेव जी के चित्रों के समक्ष ही बिताते थे।

और एक दिन उन्होंने कह ही दिया अब मैं अधिक नहीं रुकूंगा। मुझे श्री आनंदकंद प्रभु जी ने स्वयं दर्शन देकर दिन भी बता दिया है उस शुभ मुहूर्त में मैं प्राणों का त्याग करके हमेशा के लिए उनके चरणों में रम जाऊंगा।

यह सुनकर घर में कोहराम मच गया. उन्होंने समझाया श्री गुरुदेव महाराज जी एक बार मुझे रोक चुके है उन्होंने एवं श्री प्रभुजी

ने मुझ से ध्यान में कहा भी है यदि अधिक रुकना चाहूँ तो रुक तो सकता हूँ परन्तु ऐसी सद्‌गति फिर मुझे कदापि नहीं मिल सकेगी। अतः मुझे अब न रोको।

विभिन्न रिश्तेदार निश्चित तिथि को घर में एकत्रित हो गए थे, आँगन में एक स्थान पर गऊ गोबर से लिपवा कर चौक बनवा लिया था। उस दिन घण्टों तक प्रभू ध्यान में लीन रहे एवं ध्यानोपरान्त श्री आनंदकंद प्रभु जी एवं श्री सद्‌गुरुदेव जी के चित्रों के आगे माथा टेककर बड़े प्रसन्नचित्त पूजागृह से बाहर निकले।

उस समय उनके मुख पर एक अभूतपूर्व तेज था। निश्चित स्थान पर आकर बैठ गए एवं उपस्थिति लोगों से संकीर्तन करने के लिए कहा। ब्रह्म मुहूर्त में उचित समय आजाने पर एक बार चारो ओर देखा। बाद में आखें बन्द करलीं एवं सिद्धासन में बैठे-बैठे ही ब्रह्मरन्ध्र से प्राणों का उत्सर्ग करके हमेशा हमेशा के लिए श्री-चरणों में लीन होगए।

कितनी महान गति प्राप्त हुई। शायद अच्छे-अच्छे ऋषी मुनि भी ऐसी गति के लिए तरसते हैं वह श्री सद्‌गुरुदेव जी के आशीर्वाद से स्वतः ही प्राप्त हो गई।

इसी प्रकार की न मालूम कितनी विचित्र-विचित्र घटनायें आज मेरी आखों के सामने घूम रही हैं। सोचता हूँ लिखता ही रहूं-लिखता ही रहू परन्तु एक तो इसके लिए अकाट्य प्रमाणों की आवश्यकता होगी क्योंकि वे मेरे अन्य गुरु भाई बहिनों द्वारा बताई हुई हैं दूसरे श्री सद्‌गुरुदेव की लीला इतनी महान है कि यदि उनके बारे में लिखना शुरू किया जाये तो उसका अन्त नहीं पा सकूँगा।

यह मैंने जो कुछ लिखा है उसका कारण केवल एक ही है। इन सब बातों से हम श्री सद्‌गुरुदेव की विशाल शक्ति का एक सूक्ष्म सा अनुमान लगा सकेंगे। समय रहते ही यदि सम्हल गए तो 'इनसे' बहुत कुछ पा भी लेंगे अन्यथा पुष्पक' विमान की तरह हम फिर वंचित रह जायेंगे। दूसरे देशों का मुँह देखने के लिए।

यदि आज दूसरे देश उन्नति के शिखर पर पहुँचने की होड़ में लगे है तो हमें उनका अनुकरण न करके वास्तविक रूप में उनसे आगे बढ़ने के लिए स्वयं अपना अलग से रास्ता देखना होगा। यदि वे मशीनों के द्वारा कुछ प्राप्त करने की कोशिश करते हैं तो हमें हमारी प्राचीन योग-विद्या के महानज्ञाता श्री सद्‌गुरुदेव के चरणों में स्थान ग्रहण करके अन्यों से कुछ अधिक एवं ऐसी वस्तु जिसे मशीने वर्षों में ग्रहण कर भी सकेंगी या नहीं -को पाने की कोशिश करना चाहिये।

ऊँचे तत्व
-: और :-
यह शरीर
(स्वामी विवेकानन्द)

इस जगत् में ऐसी असुर प्रकृति के अनेक लोग हैं। फिर भी देवता प्रकृति वाले बिलकुल ही न हों, ऐसा नहीं। यदि कोई कहे, "आओ, तुम लोगों को मैं एक ऐसी विद्या सिखाऊँगा, जिससे तुम्हारा इन्द्रिय -सुख अनन्तगुना बढ़ जायगा," तो अगणित लोग उनके पास दौड़ पड़ेंगे। परन्तु यदि कोई कहे "आओ मैं तुम लोगों का तुम्हारे जीवन के चरम लक्ष्य परमात्मा का विषय सिखलाऊँगा" तो शायद उनकी बात की कोई परवाह भी न करेगा।

ऊँचे तत्व को धारण करने की शक्ति बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है सत्य को प्राप्त करने के लिए अध्यवसायशील लोगों की संख्या तो और भी विरली है। पर संसार में ऐसे महापुरुष भी हैं जिनकी यह निश्चित धारणा है कि शरीर चाहे हजार वर्ष रहे या लाख वर्ष। अन्त में गति एक ही होगी जिन शक्तियों के बल से देह कायम है, उनके चले जाने पर देह न रहेगी। कोई भी व्यक्ति पल भर के लिए भी शरीर का परिवर्तन रोकने में समर्थ नहीं हो सकता। आखिर शरीर और क्या है यह कुछ परमाणुओं की समष्टि मात्र है। नदी के दृष्टान्त से यह तत्व सहज बोध गम्य हो सकता है। तुम अपने सामने नदी में जलराशि देख रहे हो। वह देखो पल भर में चली गयी और उसकी जगह एक नयी जलराशि आ गयी जो जलराशि आयी वह सम्पूर्ण नयी है परन्तु देखने में पहली ही जल-राशि की तरह है। शरीर भी ठीक इसी तरह सतत् परिवर्तनशील है। उसके इस प्रकार परिवर्तनशील होने पर भी उसे स्वस्थ और बलिष्ठ रखना आवश्यक है क्योंकि शरीर की सहायता से ही हमें ज्ञान की प्राप्ति करनी होगी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं।

सब प्रकार के शरीरों में मानव देह श्रेष्ठतम है, मनुष्य ही श्रेष्ठतम जीव है। मनुष्य सब प्रकार के प्राणियों से – यहाँ तक कि देवादि से भी श्रेष्ठ है। मनुष्य से श्रेष्ठतर जीव और नहीं।

योग की सात भूमिकायें

(श्री सद्गुरुदेव की वाणी)

[इस लेख में "योग वाशिष्ठ" के आधार पर श्री वशिष्ठ जी द्वारा कही गई सात भूमियों का वर्णन किया गया है। उनके अभ्यास क्रम और लक्षण, योगभ्रष्ट पुरुष की गति एवं महान अनर्थ कारिणी हथिनी रूप इच्छा के स्वरूप और उनके नाश के उपायों का वर्णन किया गया है। सं०स०]

जीव चौरासी लाख योनियों में घूमता हुआ अन्त में मनुष्य जन्म में भाग्योदय होने पर विवेकी बन जाता है। अहो ! संसार की यह व्यवस्था बिलकुल असार है। इस अवस्था से मुझे क्या प्रयोजन है ? इन व्यर्थ कर्मों में ही मैं अपना दिन क्यों बिता रहा हूँ? मैं वैराग्यवान बनकर किस तरह संसार सागर को तैर जाऊँ-इस प्रकार के विचार में जब सद्बुद्ध प्राणी तत्पर होता है, तब उस के हृदय में भोगों और सांसारिक संकल्पों में हर समय वैराग्य, रहता है। वह सतसंग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि उत्तम क्रियाओं का अनुष्ठान करता है और उन्हीं में प्रसन्न रहता है। तुच्छ व्यर्थ चेष्टाओं में उसे निरन्तर वैराग्य रहता है। वह दूसरे के दोषों को प्रगट नहीं करता और स्वयं यज्ञ, दान, तप, सेवा पूजा आदि पुण्य कर्मों का ही सेवन करता है। वह किसी के भी मन में उद्वेग न पहुंचाने वाले शास्त्र विपरीत कर्म से सदा डरता रहता और सांसारिक विषय भोगों की कभी अभिलाषा नहीं करता। वह स्नेह और पुण्य से पूर्ण कोमल, सत्य प्रिय और हितकारक तथा देशकालोचित वचन बोलता है। वह मन कर्म वाणी से सत्पुरुषों का संग और सेवा करता है। जिसे किसी जगह से ज्ञानदायक शास्त्रों को प्राप्त करके उनका विवेक विचार पूर्वक स्वाध्याय करता है। संसार-सागर को तैर जाने के लिये इस प्रकार के विचार से सम्पन्न पुरुष प्रथम 'शुभेच्छा' नामक भूमिका को प्राप्त होता है।

शुभेच्छा (श्रवण)

१. सर्व प्रथम जो पुरुष इस शुभेच्छा नामक भूमिका को प्राप्त होता है, उसमें उसे आत्मोद्धार के सिवा और कोई भी इच्छा नहीं रह जाती। इसको श्रवण भूमिका भी कहते हैं।

विचारणा

२. इसके बाद सद्विचार का प्राप्ति होने पर वह विचारणा नामक दूसरी योग भूमिका में प्रवेश करता है। उस समय वह श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान और कर्मों में तत्पर रहने वाले पुरुषों में से जिन्होंने

अध्यात्म शास्त्रों की प्रशस्त व्याख्या करने के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है, उन श्रेष्ठ विद्वानों का आश्रय लेकर उनके उपदेशानुसार साधन करता है वह अध्यात्म-शास्त्र का श्रवण करके कार्य और अकार्य के स्वरूप को तत्त्वतः जान लेता है। वह मद अभिमान मात्सर्य मोह और लोभ को उसी तरह छोड़ देता है जिस प्रकार सांप केंचुल को। उपर्युक्त यथार्थ निश्चय से युक्त पुरुष सत् शास्त्र गुरु और सज्जनों की सेवा से ब्रह्म विषयक रहस्य को विवेक विचार पूर्वक यथार्थ रूपसे पूर्णतया जान लेता है और उसके अनुसार मनन करता है। तथा निन्द-नीय संसार के विषय भोग रूप पदार्थों से वैराग्य करके पत्थर की चटान रूपी शय्या पर आसीन हो अपनी आयु बिताता है। अध्यात्म विषयक सत् शास्त्रों के अध्ययन से उस पुरुष को अध्यात्म विषयक यथार्थ दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इस भूमिका का नाम विचारणा है इसी को मनन भी कहते हैं

३. असङ्गः — तीसरी भूमिका का नाम असङ्ग है। यह असंग दो तरह का है – एक सामान्य और दूसरा श्रेष्ठ (विशेष)। मैंन कर्त्ता हूं ' और न भोक्ता ही; मैं संसारिक कर्मों के लिये बाध्य नहीं हूं और न दूसरों का लिये बाधक हूं। इस प्रकार के निश्चय से विषय भोगों की आसक्ति से रहित होना ही सामान्य असङ्ग है। सुख या दुःख की प्राप्ति पूर्व कर्म के अनुसार निश्चित और ईश्वर के अधीन ही होती है।

इसमें मेरा कर्तृत्व कैसा? ये विस्तृत विषय भोग अन्त में संताप देने वाले होने के कारण महारोग हैं तथा ये संसारिक सारी सम्पत्तियां परम आपत्तियो हैं संयोग का अन्त में वियोग निश्चित है और ये मन के सारे विकार बुद्धि की व्याधियां है। सब पदार्थों को ग्रास बना लेने के लिए काल सदा तैयार रहता है। इस तरह अध्यात्म विषय के वचनों के अर्थ में संलग्न चित्तवाले पुरुष की हस्पूर्ण पदार्थों में जो आन्तरिक मिथ्यात्व की भावना है, वह भी सामान असंग कहलाता है। इस पूर्वोक्त अभ्यास योग से महा पुरुषों की संगति से दुर्जनों की संगति के त्याग से आत्म ज्ञान के प्रयोग से तथा लगातार अभ्यास योग द्वारा अपने पुरुष प्रयत्न से संसार सागर के पार सब के सार परम कारण भूत परमात्मा के ध्यान की स्थिति की हस्तामलकवत दृढ़रूप से खूब स्पष्ट हो जाने पर जो नाम रूप की भवना से रहित होकर "न मैं कर्त्ता हूं न ईश्वर कर्त्ता है न प्रारब्ध कर्त्ता है" यों ज्ञात और मौन रूप से स्थित रहना है वही श्रेष्ठ (विशेष) असंग कह-लाता है। तथा जो शान्त आदि अन्त से रहित सुन्दर सच्चिदानन्द घन ब्रह्म है वही श्रेष्ठ असंग कहलाता है। यही श्रेष्ठ असंग सामक

तीसरी भूमिका है। इसी को निदिध्यासन भी कहते हैं। इस भूमिका में स्थित पुरुष सम्पूर्ण संकल्पों की कल्पनाओं से शून्य होकर परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है।

प्रबुद्ध रागादि दोषों वाले मूढ़ पुरुष को सैकड़ों जन्मों के बाद जब तक काकतालीय न्याय से या महापुरुषों के संग से वैराग्य उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक उसका यह विस्तृत संसार रहता ही है। अर्थात् बिना वैराग्य के उसका उद्धार होना कठिन है। वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर प्रथम भूमिका का उदय प्राणी को अवश्य होता है और तदनन्तर उसका संसार नष्ट हो जाता है। यही शास्त्रों का परम सिद्धान्त है। प्रथम आदि भूमिकाओं में पहुँचकर मरने वाले प्राणी का भूमिकाओं के अनुसार ही पूर्व जन्म का दुष्कृत नष्ट हो जाता है। तदनन्तर वह योगी देवताओं के विमानों में लोकपालों के नगरों में तथा सुमेरु पर्वत के वन-कुंजों में अप्सराओं के साथ रमण करता है। उसके बाद पूर्व जन्म में किये गये पुण्यों और पापों का भोग समूहों के द्वारा नाश हो जाने पर वे योगी लोग पृथ्वी पर पवित्र गुणवान और लक्ष्मीवान सज्जनों के घर में जन्म लेते हैं और वहां जन्म लेकर वे लोग पूर्वजन्म के योग साधन के संस्कारों के अनुसार योग का साधन करते हैं। वहां पर पूर्व जन्म में की गई भावनाओं से अभ्यस्त हुए योग-भूमिकाओं के क्रम का स्मरण करके वे बुद्धिमान लोग आगे की भूमिका क्रम का भली भाँति पालन करने लग जाते हैं।

ये पूर्वोक्त तीनों भूमिकायें जाग्रत कही गयी हैं, क्योंकि इन भूमिकाओं में यथावत भेद बुद्धि रहने से यह सम्पूर्ण दृश्य समूह उस जाग्रतकाल की तरह ही दिखायी पड़ता है। इन तीनों भूमिकाओं में योग युक्त पुरुषों में केवल आर्यता (श्रेष्ठता) का उदय होता है जिसे देखकर मूढ़ बुद्धि पुरुषों को भी मुक्त होने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। जो मनुष्य शास्त्र-विहित कर्त्तव्य कर्मों का भली-भाँति सम्पादन करता है तथा शास्त्र निषिद्ध कर्म को सर्वथा नहीं करता है एवं सदाचार में स्थित रहता है, वह आर्य कहा गया है। श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आचरित शास्त्रोक्त तथा मन को प्रिय और हितकर यथोचित व्यवहार को जो ग्रहण करता है वह आर्य कहा गया है। योगी की यही आर्यता प्रथम भूमिका में अंकुरित द्वितीय भूमिका में विवेक के द्वारा विकसित तथा तृतीय भूमिका में संसार के असंग और परमात्मा के ध्यान रूप फल से फलित होती है। इसी तीसरी भूमिका (आर्यता) की प्राप्ति के बीच में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ योगी पुरुष शुभ संकल्प युक्त भोगों का चिरकाल तक उपभोग कर पुनः योगी ही होता है।

स्वप्न

तीनों भूमिकाओं का अभ्यास करने से

अज्ञान के नष्ट हो जाने पर वास्तविक ज्ञान का उदय होने के बाद जब चित्त पूर्ण चन्द्रोदय के सदृश हो जाता है, तब चौथी भूमिका में पहुंचे हुए युक्त चित्त योगी लोग सम्पूर्ण जगत में विभाग से तथा आदि और अन्त से रहित समभाव से परिपूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म का ही अनुभव करते हैं। द्वैत के सर्वथा शान्त हो जाने पर जब अद्वैत ही अचल रह जाता है तब भूमिका में गये हुऐ योगी लोग समस्त संसार को स्वप्न समान अनुभव करते हैं। इसलिये पूर्वोक्त तीनों भूमिकाओं को तो जाग्रत कहते हैं और चौथी भूमिका को स्वप्न कहते हैं।

अर्धसुपुप्त

५. अर्धसुपुप्त -- पचम भूमिका में पहुंच कर मनुष्य केवल सत्स्वरूप ब्रह्म बन कर रहता है। इस अर्ध सुपुप्त पंचम भूमिका को प्राप्त करके पुरुष समस्त विकारों से मुक्त हो जाता है और अद्वैत परब्रह्म रूप तत्व में नित्य स्थिति हो जाता है। पाँचवी भूमिका में स्थित पुरुष अन्तर्मुख वृत्ति से रहता है। बाह्य व्यापार में लगा हुआ भी निरन्तर चारों ओर से शान्त होने के कारण तन्द्रा में स्थित के सदृश दिखायी देता है। वह कभी तो बाहरी व्यवहार करता है और कभी अटल समाधि में स्थित रहता है। इस भूमिका में वासना शून्य होकर अभ्यास करता हुआ चला जाता है।

तुर्या

.६ तुर्या:— तुर्या नाम की छठी भूमिका कहलाती है। इस भूमिका में निर्विकल्प होने के कारण योगी द्वैत व अद्वैत की भावना से रहित हो जाता है। वह चिज्जड़ ग्रन्थि से और सन्देह से रहित हो जाता है। वह वासना से रहित जीवन्मुक्त योगी चित्र लिखित प्रदीप की भांति निर्वाण को न प्राप्त हुआ भी निर्वाण को प्राप्त हुआ सा स्थित रहता है। उसको बाहरी ज्ञान नहीं रहता ? किन्तु दूसरों के चेष्टा करने पर बाह्य ज्ञान हो सकता है। वह जीवन्मुक्त योगी बाहर और भीतर सशून्य आकाश के स्थित घट की तरह बाहर भीतर संसार से रहित रहता है तथा सागर में परिपूर्ण घट के समान बाहर भीतर ब्रह्म से परिपूर्ण रहता है। तदनन्तर छठी भूमिका में स्थित हुआ वह योगी सातवी भूमिका में पहुंचता है।

विदेह मुक्तता

.७ विदेह मुक्तता:— सातवी योग भूमिका विदेह मुक्तता कही गयी है। वह शान्त स्वरूप वाणी से अगम्य और सभी भूमिकाओं की सीमा है।

शैव उसे शिव कहते है, वेदान्ती उसे ब्रह्म कहते हैं और सांख्यवादी उसे प्रकृति और पुरुष का यथार्थ ज्ञान कहते हैं। इस प्रकारभिन्न भिन्न लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक रूपों से सप्तम भूमिका की भावना की है। यद्यपि वह भूमिका सर्वथा उपदेश योग्य नहीं है। तथापि किसी तरह इसका उपदेश किया ही

जाता है। (इस भूमिका में स्थित योगी को दूसरों के लिए चेष्टा करने पर भी संसार का ज्ञान नहीं होता।) ये सातों भूमिकाएं हैं इनके अभ्यास योग से मनुष्य सम्पूर्ण दुःखों से रहित हो जाता है। धीरे-धीरे चलने वाली अत्यन्त मदोन्मत्त, लड़ाई करने में सदा तत्पर अपने बड़े-बड़े दांतों से ख्याति को प्राप्त करने वाली एक हथिनी है। उसे यदि किसी तरह मार दिया जाय तो मनुष्य इन उपर्युक्त समस्त भूमिकाओं में विजयी बन सकता है। वह मदोन्मत्त हथिनी जब तक पराक्रम से जीत नहीं ली जाती, तब तक कौन ऐसा वीर योद्धा है। जो उपर्युक्त भूमिका-सम्पत्ति रूपी समर भूमियों में प्रवेश करने में भी समर्थ हो?

'मुझे यह मिल जाय' ऐसी जो 'इच्छा' है उसी का नाम हथिनी है। वह शरीर रूपी जंगल में रहती है और मस्त होकर अनेक तरह के शोक, मोह आदिविकारों को उत्पन्न करने में लगी रहती है। मतवाले इन्द्रियों के समूह ही उसके उग्र प्रकृति के बच्चे हैं। वह जीभ से मनोहर भाषण करती है, शुभाशुभ कर्म रूपी दो दांतों से युक्त वह मन रूपी गहन स्थान में लीन रहती है। चारों ओर दूर तक फैले हुए वासनाओं का समूह ही इस हथिनी का मद है और संसार की स्मृतियां इसकी युद्ध भूमियां हैं। यहां पर पुरुष बार बार जय और पराजय का अनुभव करता है। इच्छा नाम वाली हथिनी लोभी मनुष्यों को मारती है। वासना इच्छा मनन, चिन्तन, संकल्प, भावना और स्पृहा इत्यादि इसके नाम हैं। यह अन्तःकरण रूपी कोश के अन्दर रहती है बहुत दूर तक फैली हुई तथा सब पदार्थों में निवास करने वाली इस इच्छारूपी हथिनी पर अवहेलना पूर्वक 'धैर्य' नामक सर्वश्रेष्ठ अस्त्र से प्रहार करके सब प्रकार से विजय प्राप्त कर लेनी चाहिये।

यह वस्तु मुझे इस प्रकार प्राप्त हो जाय यह इच्छा जब तक अन्तः करण के भीतर प्रकट रहती है, तभी तक यह महा भयंकर कुत्सित संसाररूपी महाविष से उत्पन्न विसूचिकारूपी महामारी बनी रहती है। 'यह मुझे मिल जाय' यह जो संकल्प रूपी इच्छा है, बस, यही संसार है तथा इसका शान्त हो जाना ही मोक्ष है, यही ज्ञान का सार है। इच्छा रहित विशुद्ध अन्तःकरण में महापुरुषों के पवित्र और सात्विक प्रसन्नता पैदा करने वाले हित-मय उपदेश दर्पण में तैल बिन्दु की भांति जम जाते हैं एक मात्र विषयों के स्मरण का परित्याग कर देने से इच्छारूपी संसार का अंकुर उत्पन्न नहीं होता। विष के तुल्य अनेक प्रकार का अनर्थ पैदा करने वाली, इस इच्छा को तनिक-सी बढ़ते ही विषयों को सर्व स्मर रूप अस्त्र से काट डालना चाहिये। इच्छा से युक्त जीवात्मा दीनता को कभी नहीं छोड़ सकता। सुन्दर असंवेदना में यानी उत्तम रूप से विषयों का स्मरण न होने में श्रेष्ठ प्रयत्न

यही है कि चित्त अपने अन्दर संकल्पों से रहित होकर मृतक की तरह स्थिति रहे।

'यह मुझे मिल जाय' इस तीव्र इच्छा को ही उत्तम पुरुष 'संकल्प' कहते हैं और जो संसार के पदार्थों की भावना से रहित होना है उसी को संकल्प का त्याग कहते हैं। संकल्प को ही स्मरण समझो। और विस्मरण (संकल्प के अभाव) को विद्वान लोग कल्याण रूप समझते हैं। संकल्प में होने वाले पदार्थों की तथा भविष्य होने वाले पदार्थों की भी भावना की जाती है। बार-बार ऊँचे स्वर से चिल्ला कर यह कहने पर इसे अभी कोई सुनता नहीं कि संकल्प त्याग ही परम श्रेयका सम्पादक है। इसकी भावना लोग अपने हृदय क्यों नहीं करते।

सम्पूर्ण इन्द्रियों और मन के व्यापारों से रहित और ध्यान-समाधि में लीन बैठा हुआ पुरुष उस परमपद को प्राप्त करता है। जहाँ एकच्छत्र साम्राज्य भी तृण के सदृश तुच्छ है। संक्षेप में संसार का संकल्प ही सबसे बढ़कर बंधन है और उस संकल्प का अभाव ही मोक्ष है। संसार के स्मरण के अभाव को ही स्वाभाविक 'चित्त- विनाशरूप योग' कहते हैं और वह अक्षय योग शान्तरूप से नित्य स्थित है। शिव सर्वव्यापी शान्तिमय 'चिन्मय' अज और कल्याण रूप ब्रह्म के साथ जो जीव ब्रह्म के एकत्व का निश्चय है वही वास्तविक सर्व त्याग है। अहंता ममता की भावना रखने वाला मनुष्य दुःख से कभी छुटकारा नहीं पाता किन्तु अहंता ममता की भावना से रहित हुआ मनुष्य मुक्त हो जाता है।

चरित्रवान और आत्म ज्ञानी बनिए

मनुष्य को प्रथम चरित्रवान होना चाहिए तथा आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। और उसके बाद फल स्वयं ही मिल जाता है। जब कमल खिलता है तो मधु-मक्खियाँ स्वयं उसके पास मधु लेने के लिए आ जाती हैं। इस प्रकार जब तुम्हारा चरित्र रूपी पंकज पूर्ण रूप से खिल जायगा और जब तुम आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लोगे तब देखोगे कि फल तुम्हें अपने आप ही प्राप्त हो जायंगे ? और शत-शत मनुष्य आप ही आप तुमसे शिक्षा ग्रहण करने आ जायंगे।

— रामकृष्ण परमहंस

गुरु भक्ति की महिमा

(कु. शशिबाला भटनागर एम०ए०पूर्वार्ध)

प्राचीन कहावत है कि "करे सेवा पावे मेवा" यदि इसे वास्तविक दृष्टि से देखा जावे तो इसके गुण अत्यन्त महान है ।सेवा-धर्म बड़ा कठिन बतलाया गया है । पूर्व काल में शिष्य अपने गुरु की सेवाकर फलवती विद्या प्राप्त किया करते थे । उनकी सेवा के पीछे सबसे बड़ी भावना भक्ति की ही रहती थी ।

धर्म की रसात्मक अनुभूति ही भक्ति है । भक्ति का हृदय तरल गुण है । जिसे हम अपने से अधिक गुणी विद्या, सम्पन्न मानते हैं उसी के सामने भक्ति से हमारा सिर झुक जाता है । भक्ति एक प्रकार से हार्दिक सम्मान अर्थात् हृदय के द्वारा हृदय के सम्मान का प्रदर्शन है । इस दृष्टि से गुरु-भक्ति का अत्यन्त महत्व है ।

मानव जीवन क्षण-भंगुर है । इस मायारूपी भवसागर से पार कराने के लिये केवल गुरु ही सक्षम है । इसी लिये जीवन में गुरु भक्ति का अत्यन्त महत्व है । हमारा शैशव जिस मां के सुकुमार दुलार की गोदी में खेलता है उसे गति गुरु से ही प्राप्त होती है । गुरु के द्वारा जीवन में जीने की सही शिक्षा प्राप्त होती है । यह बात बिल्कुल सत्य है जिन्होंने गुरु भक्ति से गुरु के हृदय को जीत लिया है उन्होंने ज्ञान का अमृत पिया है । मनुष्य जीवन तो मिलता ही बड़ी कठिनाई से है और फिर मनुष्य जीवन पानेपर सच्चा गुरु बड़ी कठिनाई से मिलता है । वे कितने भाग्य हीन मनुष्य हैं जो अपने जीवन में सच्चे गुरु की खोज नहीं करते । और यदि सच्चा गुरु मिल भी जाय तो वे उससे लाभ उठाकर सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते । गुरु ही में केवल इतनी शक्ति है जो कि मनुष्य का साक्षात्कार भगवान से करवा सकता है । इसलिये यहां पर यह कहना युक्ति संगत होगा कि

गुरु ब्रह्मा: गुरु: विष्णु, गुरु देव महेश्वर ।।
गुरु साक्षात् ब्रह्म परं, तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

भक्ति का सबसे निकटतम सहयोगी गुण विश्वास है । पवित्र मनुष्य भावना से जिस गुरु में विश्वास के साथ भक्ति रखता है वह अपने जीवन में अवश्य सफल होता है। भक्ति हीन

हृदय संसार के किसी कोने में और अपने जीवन के किसी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता गुरु भक्ति तो इस प्रकार फलदायिनी होती है कि मनुष्य किसी ओर असफल नहीं हो सकता। भक्ति से विजित गुरु अपना सारा ज्ञान अपने भक्त विद्यार्थी को प्रदान कर देता है।

प्राचीन साहित्य में गुरु-भक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। एकलव्यने अपने गुरु द्रोणाचार्य को अँगूठे की गुरु दक्षिणा देने में तनिक भी तो संकोच नहीं किया। उसी का परिमाण है कि आज भी एकलव्य एक आदर्श शिष्य के रूप में प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में छात्र विद्याअध्ययन के लिये आश्रमों में जाया करते थे। वे अपने गुरु की तन-मन से सेवा करते थे और गुरु भी उन्हें सच्चे हृदय से पुत्र के रूप में समझा करते थे। गुरु की आज्ञा का पालन करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। एव गुरु आज्ञा पालन में किसी भी प्रकार की कठिनाई को वे सहर्ष सहने को तत्पर रहते थे वे अपना इसे सौभाग्य समझते थे। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण स्वयं योग योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान हैं। जिन्होंने अपने गुरु संदीपन को आज्ञा का पालन किया। और अपने गुरु की आज्ञा से वे जंगल से लकड़ी काटने जाते थे। यहाँ तक ही नहीं बल्कि जब कृष्ण भगवान ने अपने गुरु संदीपन से पूछा कि मैं आपको गुरु-दक्षिणा को भेट क्या दूँ ? तब उनके गुरु संदीपन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा कि तुम मेरे पुत्रों को धर्मराज से वापिस ले आओ। तब भगवान श्रीकृष्ण अपने गुरु की आज्ञा पालनार्थ धर्मराज के पास गये और गुरु के पुत्रों को धर्मराज के पास से वापिस ले आये। आज भी भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति हमारे सामने एक आदर्श गुरुसेवा में लीन रहने की प्रेरणा देती है।

गुरु भक्ति केवल भावना पर ही नहीं बल्कि कर्त्तव्य पर भी आधारित है। रहन सहन, चाल चलन सभी में गुरु-भक्ति निहित है। गुरु जिस ज्ञान द्वारा सच्चा जीवन देता है उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। मनुष्य गुरु के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। धन, सम्पत्ति, एश्वर्य या जीवन भी ज्ञान का मूल्य नहीं। ज्ञान का मूल्य तो भक्ति है। भक्ति का सबसे बड़ा गुरु यही है कि गुरु द्वारा दिये गए ज्ञान कासदोपयोग किया जाये।

संसार में जितने भी महापुरुष हैं उनके जीवन चरित का अध्ययन करने पर गुरु भक्ति का महत्व अपने आप स्पष्ट हो जाता है। श्री स्वामी दयानन्द ने भी अपने गुरु की आज्ञा पालन करने के निमित्त संन्यास लेकर देश-सेवा की।

कबीरदास जी के शब्दों में "ब्रह्म में आस्था होने और आत्मा के ब्रह्म से मिलने की भावना तथा प्रेम का उदय होने के पश्चात्

भी दोनों का मिलन तब समय तक सम्भव नहीं जब तक कि दोनों को मिलाने वाला सद्गुरु न हो।"

कबीर ने गुरु का बखान मुक्त कण्ठ से किया है और उनके विचार से गुरु का महत्व किसी भी प्रकार ब्रह्म से कम नहीं है। वह तो दोनों को एक साथ खड़े देखकर असमंजस में पड़ जाते हैं कि किसके पैर छूएं।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पांय बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय

इससे सिद्ध होता है कि गुरु की महिमा एवं सामर्थ्य कितनी महान है।

गुरु की महिमा अनन्त है। कबीरदास जी भी गुरु की महिमा निम्न शब्दों में प्रगट करते हैं।

सत गुरु की महिमा अनन्त,
अनन्त किया उपगार
लोचन अनन्त उघाड़िया
अनन्त दिखावण हार।

इसी प्रकार तुलसीदास जी ने भी तो गुरु के महत्व को निम्नाङ्कित शब्दों में व्यक्त किया है।

"बिनु गुरु होइ न ज्ञान"

× × ×

तुलसीदास ने तो यहां तक कह दिया है गुरु बिनु भव निधि तरै न कोई, संकर जो विरंचि सम होई॥

सूरदास ने भी अपने गुरु वल्लभ नख चन्द्र के बारे में कहते हैं।

"श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग मांझ अंधेरो।"

यदि कोई मनुष्य चौसठ कलाओं के ज्ञान से युक्त होकर चौदह विद्याओं से भी अपने हृदय को प्रकाशित करले लेकिन जहां तक गुरु उसके अन्तस्थल में अपना प्रकाश नहीं फैलाता तो यह सांसारिक प्रकाश उसके लिये व्यर्थ है।

अगर वास्तव में मनुष्य भगवान की प्राप्ति चाहता है तो पहले उसे अपने गुरु की भक्ति करना चाहिये। गुरु की भक्ति से ही मनुष्य को ईश्वर मिल सकते हैं। अगर जिसके हृदय में गुरु के प्रति प्रेम नहीं है और वह भगवान की भक्ति करता है तो उसे भगवान कभी भी मिल नहीं सकते। अगर ईश्वर को पाना चाहते हो तो सबसे पहिले अपने गुरु की भक्ति करो, अपने गुरु की सेवा करो भगवान अवश्य मिलेंगे। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

गुरु-माहात्म्य

(कु० सुधा श्रीवास्तव एम०ए०)

['पर इस गुरु-कृपा का यह अर्थ नहीं कि साधक का अपना कृतित्व कुछ भी न हो' सुश्री कु० सुधा श्रीवास्तव के यह विचार महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक साधक को इस तथ्य को नजर अन्दाज नहीं करना चाहिए कि गुरु-कृपा चरित्र निष्ठ और पावन हृदय वाले भक्त साधक को ही प्राप्त हुआ करती है। संयुक्त संपादक]

"ब्रह्म की संकल्पना जीव की अत्यन्त में ब्रह्माण्ड अथवा बीज में वृक्ष अथवा रश्मि-रेखा में उद्‌भासित सम्पूर्ण भास्कर- ये सब ऋज सूक्तियां हैं। इनका ऋजत्व गहन है। अनुभूतियों के धरातल पर उनका आनन्द अमोघ है किन्तु जिस स्थल पर मेरी चेतना प्रश्न वाचक चिन्ह बनाए बैठी है वह है कि जीव और ब्रह्म के मध्य में जो अवान्तर है शून्य सा, अज्ञात सा—ऐसा जिसकी निविड़ता में जीव-ब्रह्म की संज्ञा से अज्ञात रहता है यह अज्ञानावस्था क्या है? और यदि यह विसुप्ति है हो, तो इसका निदान क्या है? प्रश्न सीधा सा यह है कि वह कौन सी कृपा है जिसको प्राप्त अथवा पुष्टि पर जीव ब्रह्म ज्ञान के प्रति संवेदन शील, सज्ञान अथवा जागरूक हो जाता है।

सूफी जिसे शरीयत की स्थिति कहते हैं, भक्त जिसे आत्म-पर्यवेक्षण की संज्ञा देते हैं और योगी जिसे आत्म-शुद्धि कहते हैं, ज्ञान के मार्ग में उसका परम महत्व है। इस मार्ग की पहली शर्त है आत्म-- शुद्धि। शुद्धि काया की सरल है तथा मन की अत्यन्त दुस्तर। कितने जन्म तो मन की शुद्धि में ही व्यतीत हो जाते हैं फिर चित्त की शुद्धि की प्राप्त आवश्यकता होती है। और तब निलिप्त चेतना अथवा निर्विकार मन गुरुदेव का प्रसाद पाने का अधिकारी होता है। गुरुदेव शब्द का प्रयोग मैंने किंचित शीघ्र कर दिया क्योंकि साधना के मार्ग में गुरुदेव ही मुख्य केन्द्र हैं। जिन शारीरिक और मानसिक शुद्धियों की बात कही गई है वे भी गुरुदेव की कृपा से ही सम्भव हैं। पर इस गुरु कृपा का अर्थ यह नहीं है कि साधक का अपना कृतित्व कुछ भी न हो। साधक अकर्मण्य हो अथवा चंचल अस्थिर और अहंकारी तो गुरुदेव की प्रशंसा अथवा गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा का विज्ञापन वह चाहे कितना भी करता डोले, साधना के क्षेत्र में कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। गुरुदेव एक प्रकाश स्तम्भ हैं जिनके आलोक में हमारा पथ प्रशस्त होता है और यह प्रतीति होती है कि चलना हमें है केवल हमीं को है।

यहां तीन तत्व साधना के क्षेत्र में इंगित किए गये हैं:—

१. साधन के लिए साधक की आत्म-शुद्धि।

२. आत्म-चेती गुरुदेव।

३. गुरुदेव द्वारा निर्देशित मार्ग का अवलम्बन।

इन तीनों तत्वों को मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि ये तीन तत्व वास्तव में दो ही तत्व हैं।

१. गुरु महात्म्य।

२. गुरु अनुशीलन।

महात्मन गुरुदेव के प्राप्त होने पर यदि तनिक भी कृपारज प्राप्त हो जाए तो शरीर और मन की शुद्धि तो क्या सम्पूर्ण जीवात्मा की शुद्धि भी सम्भव है और गुरुदेव के प्रसाद के रूप में प्राप्त मार्ग का अनुशीलन कर लिया जाए तो साधन को कोई भी उपलब्धि संदिग्ध नहीं है।

गुरुदेव ज्ञाता हैं निगूढ़ और गहन रहस्य के पट उनके दृष्टि-पथ में खुल जाते हैं। आत्म-बोध और आत्म-ज्ञान दोनों ही गुरुदेव को प्राप्त होते हैं। अतः जो मार्ग साधना के पथ पर अत्यन्त सूक्ष्म जटिल और गूढ़ है भक्ति मार्ग में जो अर्चनायें अत्यन्त सूक्ष्म और दुस्तर हैं उन्ही साधनाओं और अर्चनाओं का मार्ग गुरुदेव की कृपा से अत्यन्त सरल और सुबोध हो जाता है।

ये गुरुदेव की गुणात्मक प्रशस्ति नहीं है वरन् सनातन सत्य है। गुरुदेव ब्रह्मज्ञानी हैं जो कुछ अक्षर है अज्ञेय है अनादि और अनन्त है गुरुदेव को वह प्राप्त है, सद्गुरु के समक्ष वह अत्यन्त सुगम है। क्योंकि सदगुरु उसी ब्रह्म में समाहित है। ब्रह्म और गुरुदेव में भेद नहीं होता इस लिए मनीषियों ने गुरुदेव को ब्रह्म के सम समा दृत किया है ब्रह्म और गुरुदेव को एक ही माना गया है।

गुरुः ब्रह्मा गुरुःविष्णु गुरु र्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् पर ब्रह्मतस्मै श्री गुरुवे नमः

गुरुःपिता गुरु र्माता गुरु र्देवो गुरुर्गति
शिवे रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन्

नारद ने सनत्कुमार के पास जाकर शिक्षा के लिए प्रार्थना की। सनत्कुमार ने कहा जो कुछ सीख चुके हो वह बताओ जिससे उसके आगे की बात तुमसे कहूं। नारद बोले ऋक् यजु: साम अथर्व–चारों वेद, पंचम वेद रूपी इतिहास पुराण, वेदों का वेद व्याकरण, राशि अथवा गणित, दैव अर्थात् उत्पात ज्ञान शकुन ज्ञान या दिव्य प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान, निधि अर्थात् आकर शास्त्र, (पृथ्वी में गड़े धन का ज्ञान) तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थात् यकायक और राज्य शास्त्र, देव विद्या ब्रह्म विद्या, छन्द,शास्त्र, नक्षत्र विद्या, युद्ध शास्त्र–ज्योतिष शास्त्र, सर्प विद्या, जन्तु शास्त्र, संगीत शास्त्र आदि समस्त विद्याओं का मैंने अध्ययन किया है किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने केवल बहुत से शब्दों को पढ़ा है। आत्मा को–स्वयं को नहीं पहचाना और मैं अभी तक शोक में पड़ा हुआ हूँ।

सारांश यह है कि सभी प्रकार की विद्याओं का सम्यक् ज्ञान एक आत्म-ज्ञान बिना निरर्थक है। और यह ज्ञान जब तक

नहीं मिलता तब तक मनुष्य का दुख अथवा शोक दूर नहीं होता । गोरखनाथ ने कहा है:-

पढि पढि पढि के ला मुआ,
कथि कथि कथि कहा कीन्ह ।
बढ़ि बढ़ि बढ़ि कर गया
पार ब्रह्म नहीं चीन्ह ॥
वेदे न शास्त्रे कतेवे न पुराने,
पुस्त न के बंध्या जाई ।
ते पद जाना बिह्ला जोगी,
और दुना सब धंधे लाई ॥

इसी आशय को ध्यान में रख कर कबीर कहते हैं -

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ,
पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का,
पढ़े सो पंडित होय ॥
पंडित पढ़ि गुन पचि मुए,
गुरु बिन मिले न ज्ञान
ज्ञान बिना नहि मुक्ति है,
सत्त शब्द परनाम ॥

शास्त्र-ज्ञान में आदि से अन्त तक विवाद भरा हुआ है और विवादों के दल-दल में फंसा हुआ जड़ मनुष्य ब्रह्म को गति का ज्ञान कैसे कर सकता है । ऋग्वेद में कहा गया है:-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमने,
तस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इद्विदुस्तत इमे समासते

अर्थात् आकाश सदृश अक्षर परम ब्रह्म में सभी देवता आश्रित होकर अधिष्ठित हैं कोई उस परमात्मा को नहीं जानता । ऋचाओं से उसे कैसे जाना जा सकता है।

आत्म ज्ञान गुरुदेव प्रदत्त होता है । गुरुदेव को परशिव देव कहा गया है अर्थात् गुरुदेव ही गुरुदेव हैं । जैसे आग में जलने के उपरान्त लकड़ी अथवा धागे का कपड़ा बुनने के बाद उसको लकड़ी कहा जाए या तागा ? उसी प्रकार जब सत्गुरुदेव ईश्वर में समाहित हो गए और उनका अस्तित्व समाप्त हो गया तब उन्हें मनुष्य कैसे कहा जाए ? वह अवश्य ईश्वर रूप हैं और मैं अपने जीवन को ऐसे ही सद्गुरु के मार्ग पर लगाने में प्रयत्नशील हूं क्योंकि मैं जानती हूं कि —

जो सन्मुख रहे सन्त के,
अन्त कहूँ नहि जाए ।
सुरति डोर लागी रहे,
जहँ को तहाँ समाय ॥

गुरुदेव की चरण रज स्वयं महादेव की निर्मल विभूति के समान है । और जिन मस्तकों पर यह चढ़ी है वे मस्तक गंगाजल जैसे पवित्र हो गए हैं । ऐसी चरण रज पर प्रेम और श्रद्धा से अपना शीश चढ़ाते हुए हम गोरख, कबीर, नानक, मलूक, गरीबदास सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी सिद्ध अथवा भक्त आत्माओं को पाते हैं । कबीर ने कहा है —

गुरु पारस गुरु परस है,
चन्दन बास सुबास ।

सद्गुरु पारस जीवकों,
दोन्हों मुक्ति निवास ॥

और दादू ने भी इसकी पुष्टि की है —

जहँ जगत्गुरु रहत है,
तहँ जो सुरति समाइ।
तौ इन नयनहुँ उलटि कर,
कौतुक देखै आइ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं,
गुरुः शंकर रूपिणम्।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति,
सिद्ध स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥
(रामचरित मानस)

श्री बल्लभ-नख-चन्द-छटा,
बिन सब जग मांझि अँधेरी
(सूर सागर)

बन्दौ गुरु पद कंज,
कृपा सिन्धु नर रूप हरि
(रामचरित मानस)

मुझे पुनः यह कहने में संकोच नहीं है कि गुरु ही ब्रह्म हैं और साधना का यह लक्ष्य मान कर जो आगे बढ़े हैं उन्होंने इस कठिन मार्ग को सरल एवं स्वयं सिद्ध ही पाया है। मेरी यह मान्यता कोई निजी मान्यता नहीं है यह परम्परागत है।

'कबिरा' हम गुरु रस पिया,
बाकी रही न छाक।
पाका कलश कुम्हार का,
बहुरि न चढ़सी चाक ॥
(कबीर)

सब गुण रहिता सकल बियापी,
बिन इन्द्री रस भोगी।
'दादू' ऐसा गुरू हमारा,
आप निरंजन जोगी ॥
(दादू)

ऐसा सत्गुरु हम मिला,
तेज पुंज का अंग।
झिलमिल नूर जहूर है,
रूप रेख नहि रंग ॥
(गरीबदास)

सत्गुरु ब्रह्म स्वरूप है,
मनुष्य भाव मत जान।
देह भाव जाने "दया",
ते नर पशू समान ॥
(दयाबाई)

सन्तों ने कहा है:-

गुरुदेव पर अपना समस्त भाव देकर स्वयं निश्चिन्त हो जाना और गुरुदेव का अनुगमन करना मैं श्रेयस्कर समझती हूं। गुरु मेरे लिए सर्वस्व हैं और संसार का जो कुछ भी गोचर-अगोचर है वह भी गुरु में निहित है किन्तु आशंका यह है कि कि गुरु कृपा भी दैव योग से प्राप्त होती। है यह कृपा अथवा प्रसाद मिल जाय तो फिर गुरुदेव अपने प्रयत्नों से आमूल परिवर्तन करके मुझे जीवन मुक्त बना ही देंगे। मेरे इस विश्वास का आधार सन्त परम्परा और सन्तों की सहानुभूति ही है। मुमुक्षु का प्रथम परिवर्तन माया अथवा अविद्या का नाश

होता है। शंकराचार्य ने जीव के लिए कहा है कि वह अनादि कालीन अविद्या जनित स्वप्न मेंसोया रहता है। जब तक गुरु उसे नहीं समझाता कि तुम कार्य और कारण से प्रगट नहीं हुए हो वरन् स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो तब तक जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता,

माया के अन्धकार से गुरुदेव ही मुक्त कर सकते हैं जिन पर यह कृपा हो गयी है उन पर न माया की मोहिनी चलती है न मिठास और न बल।

कबीर कहते हैं:-

कबीर माया मोहिनी,
जैसे मांठी खांड़।
सद्गुरु की कृपा भई,
नहीं तो करती भांड़॥
कबीर आई मुझहि पहि,
अनिक करे करि भस।
हम राखे गुरु आपने,
उन कीन्हो आदेश॥
माया दीपक नर पतंग,
भ्रम भ्रम माँहि परन्त।
कहे कबीर गुरु ज्ञान ते,
एक आध उबरन्त॥
माया का रस पीय कर,
हो गए डाँवाडोल,
ऐसा सत्गुर हम मिला,
ज्ञान जोग दिया खोल॥

माया के उन्माद को गुरुदेवका ज्ञान ही त्रस्त कर सकता है। आत्म - साक्षात्कार के लिए सुरति जागरित तथा उद्बुद्ध होती है और मन में ईश्वर को पाने की तीव्र अभिलाषा आ जाती है। शांकर मत में आचार्य के उपदेश का डिमडिम घोष मायाविभूति जी को जागरित कर देता है। शब्द की सीढ़ी पर चढ़कर साधक का मन गगन मण्डल में जाकर अमर प्रेम का स्वाद प्राप्त करता है। उस गगन मण्डल जो योगियों के शून्य व्योम का अनहद स्थल है अथवा जहाँ शतदल कमल में अखण्ड शत-शत सूर्यों का प्रकाश उद्भासित है अथवा जहाँ अमृत वर्षा का अजस्र वेग है और जहाँ समाधिस्थ हो कर योगी "अहं ब्रह्मास्मि" की अनुभूति करता है उसी प्रज्ञ स्थिति तक ले जाने वाली शक्ति गुरुदेव हैं वह मार्ग जटिल है जब तक उसका ज्ञाता साथ नहीं होता तब तक उसकी प्राप्ति असम्भव है।

कबीर कहते हैं —

वस्तु कहीं ढूढ़े कहीं,
केहि विधि आवे हाथ।
कह "कबीर" तब पाइए,
भेदी लीजौ साथ॥

क्योंकि गुरुदेव भृंगी के समान मुमुक्षु को अपने रंग में रंग लेते हैं। अथवा कुम्भकार के समान कच्चे घट को पक्का कर लेते हैं अथवा नाविक के सामान जीवन नौका को पार लगा देते हैं। अथवा पारस के समान, शिष्य को,लोहे से सोना बना देते हैं गुरुदेव का माहात्म्य

अवर्णनीय है। मेरी सामर्थ्य के बाहर है कि गुरुदेव माहात्म्य पर मैं एक भी शब्द का पूरा चित्र प्रस्तुत कर सकूं।

सतगुरु सवां को सगा,
ज्यों हांड़ी के बार।
जिन मानुषते देवता,
करति न लागी बार॥

हांडी अथवा बर्तन में कच्चा चावल डाला जाता है किन्तु पका हुआ निकाला जाता है बर्तन समस्त ताप स्वयं सहता है किन्तु यथा-साध्य चावल को जलने नहीं देता और कच्चा तो वह रहता ही नहीं है। यही गुरुदेव का परम प्रताप है। जो इनके चरणों में आया-उसे भवताप तो क्या साधना का ताप भी सरल हो जाता है और सताता नहीं। साथ ही वह सिद्ध भी हो जाता है।

स्पष्ट है कि सिद्ध और सन्त अथवा सिद्ध सन्त दुर्लभ हैं। दैव इच्छा से उनकी कृपा प्राप्त होती है और एक बार यदि वह कृपा प्राप्त हो जाए तो किस प्रकार मैं उसे छोड़ूं। यह मेरी आत्म का घोष है।

"जाऊं कहां तजि चरण तुम्हारे"

मन चित्त और बुद्धि

(स्वामी आत्मानंद जी)

मन, चित्त और बुद्धि की इन सब क्रियाओं को पृथक् बैठी हुई एक और भी शक्ति देख रही है। और कभी-कभी अपने इच्छा-शक्ति का सहारा दे इन के कार्य-क्रम को तरल बनाने का यत्न भी कर दिया करती है। इस पृथक शक्ति को हम चेतन-सत्ता अथवा आत्मा कहते हैं। जिस प्रकार इन्द्रियों के क्षेत्र से मन का, उस से चित्त का और उस से बुद्धि का क्षेत्र परे है, इसी प्रकार बुद्धि क्षेत्र से भी आत्मा का क्षेत्र पृथक उस पार और विशाल है। आत्मा के इस क्षेत्र का वर्णन इस लेख का विषय नहीं है, अतः यहां उसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं। यहां तो हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि आत्मिक इच्छा-शक्ति के नियन्त्रण में चित्त पर पड़ी हुई अनुभवों की हलकी सी छाप पर बुद्धि क्या चित्रकारी कर रही है। इस विषय को हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं कि वह कच्ची पेंसिल से खिंचे हुए चित्र पर पक्की स्याही की कलम फेर रही है। बिखरे हुए चित्र-फूलों को चुन-चुन कर यथा स्थान एक सूत्र में पिरो, सुन्दर माला बना रही है।

सिद्ध कबीर के चमत्कारिक चरित्र

[श्री एस० आर० सागर]
एम० आई० टी०

यों तो संसार में समय-समय पर बड़े बड़े संत हुए हैं किन्तु एक समय एक ऐसे सन्त भी हुए-जिनका तेज उस जमाने के सन्तों में सूर्य की भांति चमकता था इनका नाम संत कबीर है ।

संत कबीर ने पाठशाला की शिक्षा बिल्कुल प्राप्त नहीं की थी । वे बिल्कुल ही अनपढ़ अशिक्षित थे किन्तु वेद शास्त्रों का ज्ञान इन्हें बड़े-बड़े विद्वानों से अधिक था।

एक बार काशी में बहुत बड़े शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। भारतवर्ष के उच्च कोटि के महान वेद शास्त्रों के ज्ञाता पंडित इसमें एकत्र हुए थे। शास्त्रार्थ में भारतवर्ष के कुछ विद्वान एक ओर थे और दूसरी ओर प्रकाण्ड विद्वान सर्वानन्द थे। यह इतने महान् प्रकाण्ड पंडित थे कि अपने अर्थ को सिद्ध करने के लिये वेद व शास्त्रों के ऐसे प्रमाण दिया करते थे कि दूसरा व्यक्ति इनके आगे निरुत्तर हो जाया करता था। जब यह देखते थे कि दूसरी ओर कोई विद्वान पंडित है तो अपनी बात को सही करने के लिये वेद-मंत्रों की स्वयं रचना कर लिया करते थे और इस तरह अपने साथ मुकाबल करने वाले को किसी न किसी तरह अवश्य हरा दिया करते थे। इस शास्त्रार्थ सम्मेलन में भी ऐसा ही हुआ कि पंडित सर्वानन्द ने सब को हरा दिया । और शास्त्रार्थ में आये हुए विद्वानों ने सर्वानन्द जी को सर्वाजीत की उपाधि दे दी। सर्वानन्द सर्वाजीत की उपाधि प्राप्त कर खुशी के साथ अपने घर पहुंचे और अपनी मां से कहा कि हे मां आप मुझे सर्वाजीत कह दो क्योंकि आज मैंने बड़े-बड़े विद्वान पंडितों को शास्त्रार्थ में हराया है और उन्होंने मुझे सर्वाजी की उपाधि से विभूषित किया है। पंडित सर्वानंद अपनी मां के बहुत भक्त थे वे उनके हर वचन को वेद वचन ही समझते थे।

अपने पुत्रकी इस बात को सुनकर मां ने कहा बेटा अभी तू सर्वाजीत कहलाने का अधिकारी नहीं है। क्योंकि काशी में एक व्यक्ति रहता है जब तक तू उससे शास्त्रार्थ करके नहीं आयेगा तब तक तुझे मैं सर्वाजीत नहीं कह सकती। सर्वानन्द ने कहा ऐसा कौन आदमी महान् प्रकाण्ड विद्वान है जो मुझसे भी विद्वान

है। उसकी मां ने कहा बेटा काशी में कबीर नाम के एक सन्त हैं उनको जब तक तू शास्त्रार्थ में हरा कर नहीं आयेगा तब तक मैं तुम्हें सर्वाजित नहीं कह सकती। यह बात सुनकर पंडित सर्वानन्द अपनी विद्वता के घमण्ड में आकर बैल पर शास्त्रों को लादकर कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने चलपड़े। जब पंडित सर्वानन्द कबीर साहब के यहाँ पहुँचे तो संत कबीर को रामानन्द की मंडली के बीच में बैठा पाया। जब संत कबीर ने पंडित सर्वानन्द को देखा तो कबीर उठकर खड़े हो गये। और कहा आइये पंडित सर्वानन्द जी कहिये कैसे आना हुआ? सर्वानन्द ने कहा कि मैंने शास्त्रार्थ सम्मेलन में प्रकाण्ड विद्वानों को शास्त्रार्थ से हराकर सर्वाजीत की उपाधि प्राप्त की है। और आज मैं आपसे शास्त्रार्थ करने आया हूं। इतना सुनकर कबीर संत ने कहा कि आपने इतने प्रकाण्ड विद्वानों को हरा दिया तो मैं तो एक साधारण अनपढ़ अशिक्षित व्यक्ति हूँ आप सर्वाजीत है आपने इतने महान विद्वानों को हरा दिया तो मेरी क्या शक्ति है जो आपसे शास्त्रार्थ कर सकूँ। सर्वानन्द ने कहा कि मेरी मां ने कहा है कि जब तक तू संत कबीर से शास्त्रार्थ में नहीं जीतेगा मैं तुझे सर्वाजीत नहीं कह सकती।

इतना सुनकर कबीर ने कहा कि आप बिना शास्त्रार्थ किये हुये ही मुझे हारा हुआ मान लें तुम चाहो तो एक कागज पर तुम स्वयं लिखकर मेरा अगूंठा लगवा लो। यह सुनकर पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में जीत गये व कबीर जी हार गये और ऐसा लिख कर कबीर जी का अगूंठा लगवा लिया।

इसके बाद पंडित सर्वानन्द प्रसन्नता पूर्वक अपनी मां के पास पहुँचे और वह कागज उन्हें दिखाया। जब सर्वानन्द की मां ने जब कागज को खोल कर पढ़ा तो उसमें लिखा हुआ था शास्त्रार्थ में कबीर जी जीत गये। और पंडित सर्वानन्द हार गये। इतना पढ़कर सर्वानन्द की मां ने कहा कि बेटा मैंने पहले ही कहा था कि तू कबीर से शास्त्रार्थ में जीत नहीं सकता। इतना सुन कर पंडित सर्वानन्द ने वह कागज अपने हाथ में ले लिया और स्वयं पढ़ा तो बड़ा आश्चर्य हुआ। क्यों कि इस कागज पर स्वयं अपने हाथ से सर्वानन्द ने लिखा था "पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में जीत गये और कबीर जी हार गये। वे सोचने लगे मेरे साथ धोखा तो नहीं हुआ। या यह कोई सिद्ध पुरुष है? किन्तु संशय बना रहा और पुनः अपनी सम्पूर्ण पुस्तकों को बैल पर पर लाद कर कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने चल पड़े। सर्वानन्द ने कबीर के पास जाकर फिर शास्त्रार्थ करने को कहा तो फिर कबीर जी ने वेही शब्द कहे कि पंडित जी मैंने पहले भी कहा था कि आप अपने हाथ से लिख लें कि पंडित सर्वानन्द जीतगये" और कबीर हार गये अब चाहें तो किसी अन्य व्यक्ति से लिखवा

लें। सर्वानन्द ने वे ही शब्द किसी दूसरे व्यक्ति से लिखाये कि "पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में कबीर जी से जीत गये" और इस लिखे हुए कागज को लेकर वे वापस फिर अपनी मां के पास आये और कहा ले पढ़ ले कौन हारा और कौन जीता है। तब उनकी मां ने उस कागज को खोलकर पढ़ा तो कहा बेटा तू वही कागज ले आया है इसमें तो यही लिखा है कि पंडित सर्वानन्द शास्त्रार्थ में कबीर जी से हार गये।" इस प्रकार की दुबारा आश्चर्यजनक बात को देखकर प० सर्वानन्द के हृदय में निश्चय हो गया कि कबीर कोई साधारण पुरुष नहीं है। बल्कि यह परम तपस्वी साधक है अथवा कोई परम पूर्ण सिद्ध है। पंडित सर्वानन्द वापस लौटकर कबीर साहब के स्थान पर गये और उनके चरणों में जाकर गिर पड़े तथा कहने लगे मैं आपको अज्ञानतावश पहचान नहीं सका। मैं आपकी शरण में आया हूँ। फिर भी पंडित सर्वानन्द और कबीर के बीच में शास्त्र-चर्चा चलती रही। और कबीर की एक बात का भी उत्तर सर्वानन्द नहीं देसके

प० सर्वानन्द जानबूझ कर वेद मंत्र गलत बोलते थे जिनको कबीर जी शुद्ध करते जाते थे। अन्त में हार कर सर्वानन्द ने कबीर जी से दीक्षा ले ली और कबीर मिशन का बहुत बड़ा प्रचार फिर प० सर्वानन्द ने भारतवर्ष में किया।

ॐ

उपयोगी-उपदेश

शक्ति की अभिव्यक्ति चित्त मे प्रकट होती है। सद् गुरु के प्रदत्त मंत्र में गुरु के संकल्प द्वारा चित्त की आंशिक शक्ति बीज रूप से शिष्य में बोई जाती है। और वह शिष्य के चित्त में अंकुरित होकर विकास पाती है।

× × ×

बहुधा लोग यह समझा करते हैं कि बुद्धि परमात्मा की देन है और वह हमें जैसी मिली है वैसी ही रहेगी। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। पर लोगों की यह धारणा ठीक नहीं है। जैसी बुद्धि इस समय हमारे पास है उसका निर्माण हमने स्वयं किया है और भविष्य में भी उसके परिवर्तन व परिवर्धन हमारे अपने ही हाथ में है। परमात्मा की देन समझ कर भाग्य की दुहाई देने वाले लोग अपनी निर्माण-शक्ति को निर्बल कर रहे हैं और हाथ में आया हुआ एक अवसर खो रहे हैं।

—'शिव संकल्प' से साभार

मोक्ष-प्राप्ति का उपाय एवं अष्टाङ्ग योग का संक्षिप्त प्रतिपादन

लेखकः—
(श्री हरिप्रसाद उपाध्याय व्याकरणाचार्य)
बरैनी-मिरजापुर

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह इस परिवर्तनशील नश्वर जगत् में अपरिवर्तनशील, अविनाशी नित्य सत्य स्वरूप पर ब्रह्म परमेश्वर का अन्वेषण सर्वदा से करता आया है। यह सत्य स्वरूप पर ब्रह्म परमेश्वर द्वन्द्वातीत, कार्य-कारण भाव से परे अखण्ड अपूर्व एवं स्वयम्भू है। चर्म चक्षुओं से अदर्शनीय एवं नित्य है। असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधि में योगियों ने इसे प्रत्यक्ष किया है।

किसी वस्तु का प्रत्यक्षज्ञान प्रकाश में चक्षु द्वारा, अन्धकार में श्रोत्र अथवा स्पर्श द्वारा किया जाता है। किन्तु परात्पर ब्रह्म सत्य स्वरूप परमेश्वर का "जो मुमुक्षु प्राणियों के मोक्ष के दाता है इन किन्हीं इन्द्रियों द्वारा नहीं प्रत्यक्ष किया जाता अपितु ज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता है।

प्राणी, को शम, दम, तितिक्षा श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न हो मुक्ति की इच्छा रखकर ज्ञान प्राप्ति के लिये आनन्द स्वरूप, जरा रहित, परम ज्योतिर्मय निर्गुण, नित्य अद्वितीय अनुपम परिपूर्ण जो परात्पर ब्रह्म परमेश्वर है उन्हीं की उपासना एवं समर्चना करनी चाहिये, साधु पुरुषोंने ऐसा कहा है। जो राग द्वेष से रहित होकर सात्त्विकी निष्ठावान् हो प्रति दिन पर ब्रह्म परमेश्वर के ध्यान में तत्पर रहता है वह मुमुक्षु कहलाता है। मुमुक्षु प्राणी अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयत्नशील रहता है।

विवेक ज्ञान से सम्पन्न मुमुक्षु, व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवास्थितत्व ये नौ चित्त के विक्षेप तथा विभ्रम हैं

व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या-
विरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानि-
चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः

योग सूत्र १.३०

इन से रहित अपने मन को विषयों से हटाकर मोक्ष की प्राप्ति के लिये सत् चित् आनन्द मय ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का चिन्तन करो मन को विषयासक्त न होने दो। क्योंकि मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही होता है। तथाहि विष्णु पुराण ३-७। २८-२९

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः,
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्तं निर्विषयं मनः।
बिवम्येयः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः।
चिन्त येन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम्॥

अर्थः — मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। विषय का सङ्ग करने से बन्धन कारक और विषय से शून्य होने से मुक्ति कारक होता है। अतः ज्ञान मुक्त मुमुक्षु मुनि विषयों से मन को पृथक करके मुक्ति के लिये परब्रह्म परमेश्वर का चिन्तन करे। मुमुक्षु को योगाभ्यासी होना चाहिये।

ब्रह्म के साथ मन की विशिष्ट गति का संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जिसका योग इस प्रकार के विशिष्ट धर्म से युक्त होता है वह मुमुक्षु योगी कहा जाता है। जब मुमुक्षु प्रथम-प्रथम योगाभ्यास प्रारम्भ करता है तो उसे योग युक्त योगी कहते हैं। जब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है तो वह विनिष्पन्न समाधि योगी कहलाता है। जब कभी योग युक्त योगी का चित्त विघ्न वशात् दूषित हो जाता है तो वह जन्मान्तर में भी पूर्व के अभ्यास को करते रहने से मुक्त हो जाता है।

विनिष्पन्न समाधि योगी तो योगाग्नि से कर्म समूह के भस्म हो जाने के कारण उसी जन्म में तत्काल मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

योगी अपने चित्त को ब्रह्म चिन्तन के योग्य बनाता हुआ, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन योग के आठ अङ्गों का निष्काम भाव से सेवन करे।

तथाहि पातञ्जल योग दर्शन-यम नियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमा अर्थात्-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच यम हैं।

अहिंसा—वेद में बताये हुये नियम के अतिरिक्त जो मन वाणी और शरीर द्वारा किसी को किसी प्रकार का कष्ट दिया जाता है आहोस्वित् उसका प्राणों से वियोग कराया जाता है वही वास्तविक हिंसा है अन्य नहीं। इस प्रकार की हिंसा का सर्वथा त्याग करना अहिंसा है। अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुंच जाने वाले साधकों के प्रति प्राणीमात्र वैर छोड़ देते हैं। योग सूत्र साधन पाद ३५-अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। सत्य सत्, चित्, आनन्द मय परमब्रह्म परमात्मा ही सत्य स्वरूप हैं इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु सत्य नहीं है। वेदान्त के पारगामी विद्वानों ने इस प्रकार के निश्चय ज्ञान को ही सत्य कहा है। अथवा यथार्थतः जो वाणी द्वारा कही गई चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखी गई एवं श्रवणेन्द्रिय द्वारा सुनी गई अथवा घ्राणेन्द्रिय द्वारा सूंघी गई सत्य हैं। सत्य प्रतिष्ठत योगी

जो अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला है उस की वाणी सर्वदा सफल हो जाती है। योग दर्शन साधन पाद ३६ (सत्यं प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।)

अस्तेय — जगत् के समस्त व्यवहारों में अनात्म बुद्धि रख कर उन्हें आत्मा से दूर रखने का जो भाव है उसी को आत्मज्ञ महात्माओं ने अस्तेय कहा है। आहोस्वित् किसी भी वस्तु के लिये चाहे वह बहुमूल्य ही क्यों न हो मन में भी कभी लोभ न करना अस्तेय है। तथाहि-अन्यदीये तृणं रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपिच। मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेय-विदुर्बुधाः। अस्तेय में जिस व्यक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है उसको सब रत्न उपस्थित होने लगते हैं। योग सूत्र साधन पाद-३७-(अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्।)

ब्रह्मचर्य--मन, वाणी व शरीर द्वारा स्त्रियों के सहवास का परित्याग ही ब्रह्मचर्य है। स्त्रियों के सहवास के परित्याग से वीर्य की रक्षा होती है। वीर्य को हमारे शास्त्रों में ब्रह्म रूप से कथन किया गया है। मन को पर-ब्रह्म के चिन्तन में लगाये रखना सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य है। भगवान् पतञ्जलि ने योग सूत्र में ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः।

योग सू० २-३८

अर्थात् ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा में सामर्थ्य लाभ होता है। भगवान् व्यासदेवने इस सूत्र के भाष्य में कहा है — यस्य लाभाद् प्रतिघान गुणानुत्कर्षो यतिः सिद्धश्च विनेये-षुज्ञानमाधातु समर्थो भवतीति। अर्थात् इस ब्रह्मचर्य को धारण कर लेने पर अनुपम गुण की वृद्धि होती है और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान धारण करा सकता है।

अपरिग्रह — परिग्रह का न होना अपरिग्रह है। आपत्ति काल में भी द्रव्यों का संग्रह न करना अपरिग्रह कहा गया है। अपरिग्रह से योग मार्ग में उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है। पूर्व के संस्कार उदय हुआ करते हैं। वह प्राणी अपने को सांसारिक वासनाओं से अलग रखता एवं देखता है। इतना ही नहीं जन्म जन्मान्तर की घटित घट-नाओं का स्मरण होने लगता है। भगवान् पतञ्जलिजी ने लिखा है — अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथान्तासंबोधः।

योग सू०-२-३६

शौच संतोष तपः स्वाध्या येश्वरप्र-णिधानानि नियमाः। अर्थात् — शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम है। इनका वर्णन आगे किया जायगा

शौच

पुरुष की बुद्धि सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण के मलों को त्याग कर पवित्र हो जाती है तो पुरुष साक्षात्कार हो जाया करता है यही पवित्रता की चरमावस्था है। इसी को शौच कहते है। वास्तव में तो 'योगाङ्गानुष्ठानाद् अशुद्धि का नाश होता हैं और पवित्रता का उदय होता है तथा ज्ञान का प्रकाश होता रहता है। शुद्धि की चरमावस्था को पहुंच जाने पर योगी को अपने अङ्गों में भी जुगुप्सा उत्पन्न होने लगती हैं और अन्य प्राणियों के संसर्ग से वह योगी दूर होने लगता है।

संतोष

इस लोक से ब्रह्म लोक पर्यन्त तक के भोग में आसक्ति का परित्याग करके देवेच्छा जो कुछ मिल जाय उतने ही में मन को पूर्ण संतुष्ट रखना उत्तम संतोष कहलाता है। इस प्रकार मन की संतुष्टि रखने वाला व्यक्ति स्थित-प्रज्ञ कहलाता है। गीता के अध्याय ६ में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थितिप्रज्ञ का लक्षण बतलाया है —

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः।
वीत रागभय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

अर्थ स्पष्ट है। नैराश्यं सुख, जो सर्वोत्तम सुख है वह स्थिति प्रज्ञ ऐसे व्यक्ति को ही, जो सतत संतुष्ट रहते हैं प्राप्त होता रहता है। "संतोषादनुत्तमसुख लाभः" यह भगवान पतञ्जलि का वाक्य है।

तप

वेद में बताये हुये नियम के अनुसार काष्ठवत् मौन होकर आसनारूढ़ एकाग्र चित्त हो कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों द्वारा ब्रह्म का चिन्तन करना ही तप कहलाता है। तप के द्वारा चित्त प्रसन्न रहता है। अशुद्धि का क्षय होता है। कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि की उपलब्धि होती रहती है।

स्वाध्याय

प्रणव आदि मंत्रों का जप मोक्ष प्राप्ति के लिये वेद-वेदाङ्ग गीता उपनिषद् पुराण आदि सद् ग्रन्थों एवं शास्त्रों का अध्ययन ही स्वाध्याय कहा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उत्पत्ति प्रणव से है। सब प्रकार के विघ्नों की निवृत्ति प्रणव जप से होती है। तथापि

प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः।
प्रणवात्प्रभवो रुद्र प्रणवो हि परो भवेत्।

एवं

प्रणवं प्रजपेद्दीर्घ सर्व विघ्नोपशान्त ये।

इत्यादि दृष्टान्तों से अंत करण की शुद्धि में

एवं विघ्नों की निवृत्ति में भी प्रणव जप वेदादि विहित है। स्वाध्याय से अनेक प्रकार की सिद्धियां होती रहती हैं, देवता ऋषि एवं सिद्ध लोग स्वाध्यायशील व्यक्ति के समक्ष आया-जाया करते हैं।

देवाऋषयः, सिद्धाश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शनम्। गच्छति कार्येचास्य वर्त्तते इति।

ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर में प्रणिधान रखना अर्थात् परम गुरु ईश्वर में अखिल शुभाशुभ कर्मो का अर्पण करना आहोस्वित् उसके कर्म—फल का त्याग करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

ईश्वर प्रणिधान –सर्व क्रियाणां परमगुरा-र्पण तत्फलं संन्यासो वा।

ईश्वर—प्रणिधान से समाधि की प्राप्ति एवं सिद्धि होती है। योग-दर्शन साधन-पाद समाधि-सिद्धरीश्वर प्रणिधानात्। ये पञ्च पञ्च यम तथा नियम निष्कामानां विमुक्तिदाः हैं

पांच यम तथा पांच नियम जिन्हें दर्शन-शास्त्र एवं पुराण आदि के प्रणेताओं ने बताया है निष्काम कर्म करने वाले पुरुषों को मुक्ति प्रदान करते हैं तथा लौकिकवा–सनाओं से सदा विरत रखते हैं।

आसन

स्वस्तिकासन गोमुखासन, पाद्मासन वीरासन, सिंहासन, भद्रासन मुक्तासन, मयूरासन, सुखासन, यह सब योग साधन के हेतु हैं इनका नित्य अभ्यास ईर्ष्या द्वेषों से रहित होकर सत्गुरुदेव के चरणों में भक्ति एवं अनुराग रखते हुये करे। एकान्त वास, संयम सात्विक आहार ब्रह्मचर्य अनन्त शक्ति सम्पन्न सत्गुरुदेव का चिन्तन इन आसनों के अभ्यास के मुख्य हेतु माने जाते हैं।

श्री सिद्ध गुफा सवांई (आगरा) में इन आसनों एव योग तथा अन्य चमत्कारिक क्रियाओं की शिक्षायें दी जाती हैं। वहां के आचार्य सत्गुरुदेव योगिराज १००८ श्री चन्द्र-मोहन जी महाराज हैं जो परम कल्याण स्वरूप ब्रह्म तेजो राशि मण्डल, निरुपम परम कैवल्य अबाधित परमतत्त्व अनंत शक्ति सम्पन्न, क्षण-क्षण वन्दनीय अभिनन्दनीय एव उपासनीय हैं। ऐसे सत्गुरुदेव के शरणगत परम निष्ठावान् होकर इन आसनों एव योग तथा अन्य चमत्कारिक क्रियाओं का अभ्यास करे तथा इन्हीं के द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करे।

प्राणायाम :–

शरीर के भीतर स्थित वायु का नाम प्राण है। उसके निग्रह को आयाम कहते हैं यही प्राणायाम कहा गया है। प्राणायाम दो प्रकार

के बताये गये है। अगर्भ प्राणायाम तथा सगर्भ प्राणायाम कहलाता है। जप और ध्यान के सहित जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ प्राणायाम कहलाता है। मनीषी महात्माओं ने दो भेदों वाले प्राणायाम को पूरक, कुम्भक, रेचक के भेद से तीन प्रकार का बताया है। प्राण संयम सम्पन्न इन्हीं के द्वारा होता है। ओंकार के जो तीन वर्ण अकार, उँकार, व-मकार हैं वे क्रमशः पूरक, कुम्भक, रेचक से सम्बन्ध रखने वाले बताये गये है। इन तीनों वर्णों का समूह ही प्रणव कहा गया है। अतः प्राणायाम भी प्रणव है। इड़ा नाडी के द्वारा वायु को धीरे धीरे खींचकर उदर में भरे और ब्रह्ममय अकार के स्वरूप का चिन्तन करे उसके बाद उदर में भरी हुई वायु को कुछ काल तक धारण करे और विष्णु मय उकार के स्वरूप का चिन्तन करते हुये प्रणव का जप करता रहे। तदनन्तर शिवमय मकार के स्वरूप का चिन्तन करते हुये पिङ्गला नाड़ी के द्वारा धीरे-धीरे उदर में भरी हुई वायु को बाहर निकाले। इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने से साधक को वाञ्छित सुख की प्राप्ति होती है।

प्रत्याहार

जो विषयों में स्वभावतः विचरने वाली इन्द्रियों को बल पूर्वक विषयों से सर्वथा लौटा कर अपने भीतर रोके रहता है उसके इस प्रय-त्न को प्रत्याहार कहते है। अथवा मनीषी पुरुष एकाग्र चित्त हो देह से आत्मबुद्धि को हटाकर उसे स्वयं ही निर्द्वन्द एवं निर्विकल्प स्वरूप अपने आत्मा में स्थापित करे, वेदान्त तत्व के जानने वाले महात्माओं को वास्तविक प्रत्या हार कहा है। इस प्रकार प्रत्याहार का अभ्या-स करने वाले पुरुष के लिये सग कुछ सुलभ होता रहता है और वे महात्मा पुरुष ध्यान न करने पर भी पुनरावृति रहित पर ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते है।

धारणा

प्रत्याहार द्वारा वश में की हुई इन्द्रियों को अपने आत्मा में ही अन्तर्मुख करके धारण करे। इस प्रकार इन्द्रियों का जो आत्मा में धारण करना है उसी को "धारणा" कहते हैं। योगी इन्द्रियों के समुदाय को जीतकर धारण द्वारा उन इन्द्रियों को दृढ़ता पूर्वक हृदय में धारण कर लेने के पश्चात् उन अविचल अनन्त शक्ति सम्पन्न, निर्गुण एवं निराकार परमब्रह्म परमात्मा को अपने चित में धारण करता है। ऐसा करने से योगियों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वे अमृतत्व को प्राप्त हो जाते है।

ध्यान :—

ध्येय वस्तु में चित्त की वृति का एका—

एकार होजाना ही साधु पुरुषों द्वारा ध्यान कहा गया है। 'एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आधि' इस कहावत के अनुसार उस व्यक्ति को सत्य स्वरूप, सब का ईश्वर, ज्ञानरूप आनन्द, मय अद्वितीय, अत्यन्त निर्मल, नित्य, आदि, मध्य, अन्त से रहित, स्थूल प्रपञ्च से परे, प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा नहीं जानने योग्य, अनुपम, एवं अदृश्य उस सत् - चित् आनन्द मय पर ब्रह्म का अपने आत्मा के रूप में ध्यान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि हो जाती है। तथाहि कारिकायाम्।

ध्यानात् पापानि नश्यन्ति ध्याना-त्मोक्षं च विन्दति। ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थ साधनम्।

अर्थ स्पष्ट है।

परमात्मा और जीवात्मा की एकता के विषय में निश्चयात्मक बुद्धि का उदय होना ही समाधि है। योगी पुरुष समाधि अवस्था में न देखता है, न सुनता है न सूँघता है, न स्पष्ट करता है और न कुछ बोलता है उस अवस्था में योगियों को सम्पूर्ण उपाधियों से मुक्त शुद्ध निर्मल सत्-चित् - आनन्द स्वरूप एवं अविचल आत्मा जो परम ज्योतिर्मय तथा अगेय है उसका साक्षात्कार होने लगता है, उसकी वासनायें विलीन हो जाती हैं। और वह परमानन्द रूप मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

मानव धर्म महान

(श्री ब्रह्मानंद जी बन्धु)

मथी गई सागर की लहरें निकले रत्न महान।
देख हलाहल के उस घट को काँप उठे भगवान॥
हँसते हँसते पानकर गये उसको शंभु सुजान।
साधका सावधान। यह ही है मानव धर्म महान॥

× × ×

अवधपुरी में बजी बधाई राजतिलक का गान।
अकस्मात रुक गया राम ने किया विपिन प्रस्थान॥
'धिक जीवन' कहकर दशरथ भी चढ़े स्वर्ग सोपान।
साधक सावधान यह ही है मानव धर्म महान॥

श्री गुरुदेव जी का आगामी कार्यक्रम

दिनांक २४ सितम्बर ६९ तक पिछले कार्यक्रम की पूर्ति के बाद १२ अक्टबर ६९ तक पूज्य श्री गुरुदेव जी महाराज सवांई आश्रम पर रहकर आश्रम सम्बन्धी व्यवस्था की देख भाल करते रहे। इसके पश्चात् उनका अगला कार्य्यक्रम इस प्रकार रहेगा :—

दिनाङ्क	विवरण
१३-१०-६९ को	मुरादाबाद के लिए प्रस्थान
१४-१०-६९ से १५-१०-६९ तक	मुरादाबाद के हाथी वाला मन्दिर में योग प्रचार कार्य्यक्रम पता :— द्वारा – श्री शिवनारायण सिंघल अमरोहा-गेट , मुरादाबाद
१६-१०-६९ को	सहारनपुर के लिए प्रस्थान
१६-१०-६९ से २४-१०-६९ तक	सहारन के नरायण मन्दिर , नारायण पुरी गिल कालोनी में योग-प्रचार कार्य्यक्रम समय रात्रि में ८ से १० बजे तक श्रीगुरुदेवजी का प्रवास मैंदा मिल सहारनपुर में रहेगा। पत्र व्यवहार का पता होगा द्वारा श्री ओमकाश मित्तल मैंदामिल सहा-रनपुर
२५ १० ६९ को	चण्डीगढ़ के लिये प्रस्थान
२५-१०-६९ से ६-१०-६९ तक	चण्डीगढ़ में योग – प्रचार कार्य्यक्रम पत्रव्य वहार का पता - द्वारा श्री ओमप्रकाश शर्मा ५४ डी. सैक्टर - १४ चण्डीगढ़
७-१०-६९ / को	चण्डीगढ़ से आश्रम के लिए प्रस्थान प्रतिवर्ष की भांति श्री गुरुदेव दीपावलि पर्व पर आश्रम पर १५।२० दिन निवास करते हैं किन्तु कभी कभी स्थिति के अनुसार इस प्रोग्राम में भी परिवर्तन संभव हो जाता है। अतः ७ नवम्बर के बाद का निश्चित कार्य्य-क्रम आगामी अंक में देखें

— व्यवस्थापक

मैं और मेरी मर्जी

हिंसा में एक ही भाव भरा रहता है। मैं और मेरी मर्जी। 'मैं' जो चाहूं सो करूं, 'मेरी' मर्जी ही कानून है, 'मेरी' ही बात चलनी चाहिए, 'मेरा' ही विचार चलना चाहिए। 'मुझे' हर तरह का सुख मिले, सारी दुनिया सारी सृष्टि 'मेरी' इच्छाओं के अनुकूल चले। जो कोई 'मेरी' इच्छाओं के प्रतिकूल चलेगा, बोलेगा उसे, मैं कुचल दूंगा, बर्बाद कर दूंगा, मिट्टी में मिला दूंगा। यह 'मैं' हर जगह टकराता है। घर में, परिवार में, कारखाने में, सड़क पर, यात्रा में समाज में, सभा में, संसार में, जहाँ देखिए 'मैं' का बोल-बाला है। 'मैं' का संघर्ष है, लड़ाई है झगड़ा है विरोध है। घर की कलह दफ्तर में जाती है, दफ्तर की कलह घर में आती है। सभा में जाती है राष्ट्र में जाती है, संसार में जाती है। इस कलह से घर बर्बाद होते हैं। समाज बर्बाद होकर राष्ट्र बर्बाद होते हैं।

योग दर्शन में इसीलिए अहिंसा को यमों में प्रथम स्थान दिया गया है

कोई भी और लक्षण न हो मनुष्य केवल सत् आचरण करे और श्रद्धावान हो किसी के गुणों में दोष न देखे तो वह सौ वर्ष तक जीता है।

× × ×

बुरे आचरण से मनुष्य जगत में निन्दित होता है। सदा दुःख पाता है। रोगी रहता है, और छोटी आयु वाला होता है।

× × ×

जो मनुष्य अधार्मिक होता है, अनैतिक होता है, अनर्थ से धन कमाता है और नित्य हिन्सा में लगा रहता है वह इस लोक में सुख नहीं पाता।

— मनु

[हाने गुरु]

मुद्रक — देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस बघई कर्ला ताजगंज आगरा —६